ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार,23 मार्च 2014

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 23 मार्च 2014 से 29 मार्च 2014

चै. कृ. 07 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 100, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

सभा प्रधान श्री पूनम सूरी जी ने टंकारा में ऋषि बोधोत्सव पर महर्षि दयानन्द को दी अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि

इस वर्ष टंकारा में ऋषि बोधोत्सव दिनांक 21 फरवरी से 28 फरवरी 2014 तक एक नये उत्साह, उमंग उल्लास के साथ समरोहपूर्वक आयोजित किया गया। यजुर्वेद पारायण यज्ञ निरन्तर 27 फरवरी तक चलता रहा जिसमें आचार्य रामदेव जी के अतिरिक्त डॉ. सोमदेव शास्त्री आदि विद्वानों के प्रवचन एवं श्री सत्यपाल पाथिक जी, श्री अमर सिंह आर्य एवं श्री जगत वर्मा के मधुर भजनों का आनन्द ऋषि भक्त लेते रहे।

इस अवसर पर लेखन एवं तर्क–वितर्क प्रतियोगिता आयोजित की गई तथा विजयी टीमों को पारितोषिक वितरित किये गये।

सायंकालीन यज्ञ के उपरान्त ब्रह्मचारियों द्वारा भजन एवं संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। तथा एक सामाजिक नाटिका प्रस्तुत की गई।

27 फरवरी 2014 को प्रातः यज्ञ पूर्णाहुति के अवसर पर अतिरिक्त हवनकुण्डों की भी व्यवस्था की गई थी। यज्ञ के मुख्य यजमान थे डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान माननीय श्री पूनम सूरी जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मणि सूरी जी। इनके अतिरिक्त मुख्य यजमानों में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री एस के शर्मा सपत्नीक, श्री वी.के. शर्मा, स्थानीय सचिव, डी.ए.वी. संस्थायें शोलापुर एवं श्री के बी कुशल रीजनल डायरेक्टर डी.ए.वी. पब्लिक स्कूलस गुजरात एवं महाराष्ट्र थे। पूर्णाहुति के उपरान्त श्री पूनम सूरी जी एवं श्रीमती मणी सूरी जी द्वारा ध्वजारोहण किया गया

ध्वजारोहण के उपरान्त की पूनम सूरी जी एवं श्रीमती मणी सूरी जी द्वारा शोभायात्रा का शुभारम्भ ओ३म् ध्वज हिलाकर किया गया जिसमें सबसे आगे उपस्थित संन्यासीवृंद एवं उनके पीछे भारत वर्ष से पधारे ऋषि भक्त अपने–अपने आर्य समाज एवं संस्थाओं के बैनर पकड़े हुए थे।

माननीय श्री पूनम सूरी जी एवं श्रीमती मणी सूरी जी महर्षि दयानन्द जन्म गृह पर पहुंचे जहां उन्होंने महर्षि के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की और वहां पर आगन्तुत पुस्तिका में अपना सन्देश लिखे। सन्देश लिखते हुए वे इतने भावुक हो गये की उनकी आंखों से आंसू बहने लगे और उन्होंने वहां उपस्थित महानुभावों को कहा कि आप सभी मुझे एकान्त में छोड़ देंगे ताकि मैं यहां से ऊर्जा प्राप्त कर सकूं।

अपरान्ह विशेष श्रद्धांजलि सभा का आयोजन था जिसमें श्री पूनम सूरी जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मणि सूरी जी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हुए। इस अवसर पर ''टंकारा रत्न'' ''टंकारा श्री'' और ''टंकारा मित्र'' उपाधियों से क्रमशः श्री हंसमुख परमार, श्रीमती ऊषा वर्मा और श्री नान जी भाई हापलिया को विभूषित किया गया।

श्री एस.के शर्मा, मन्त्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डॉ. सोमदेव शास्त्री द्वारा महर्षि दयानन्द जी के प्रति प्रवचनों द्वारा श्रद्धांजलि दी गई जिससे पधारे हुए आर्य महानुभाव बहुत ही प्रभावित हुए।

श्री पूनम सूरी जी प्रधान, डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने अपने वक्तव्य में आश्वासन दिया के टंकारा को विश्वदर्शनीय बनाने में डी.ए.वी. एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से पूर्ण सहयोग दिया जायेगा। इस संदर्भ में उन्होंने पांच लाख का एक चैक टंकारा कार्यों के लिये आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से भेंट किया जिसका पधारे हुए आर्य जनों ने करतल ध्वनि से स्वागत किया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – **श्री पूनम सूरी**

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 23 मार्च, 2014 से 29 मार्च, 2014

हिरण्य-धारण

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

आयुष्यं वर्चस्य् रायस्पोषमौद्भिदम्।
इद् हिरण्यं वर्चस्वज्, जैत्रायाविशतादु माम्।।

यजु ३४.५०

ऋषिः **दक्षः**। देवता **हिरण्यं तेजः** छन्दः **भुरिग् उष्णिक्।**

● (**आयुष्यं**) आयु के लिए हितकर, (**वर्चस्यं**) ब्रह्मवर्चस को प्राप्त कराने वाला, (**रायस्पोषं**) ऐश्वर्य का पोषक (**औद्भिदं**) (शत्रुओं, विघ्न–बाधाओं एवं दुःखों को) उद्भिन्न कर देने वाला (**इदं**) यह (**वर्चस्वत्**) आत्म–कान्ति से युक्त (**हिरण्यं**) हिरण्मय तेज (**जैत्राय**) विजय के लिए (**मां**) मुझमें (**आविशतात् उ**) प्रविष्ट होवे।

● संसार के युद्ध–क्षेत्र में शत्रुओं, विघ्न–बाधाओं और दुःखों से संघर्ष करते हुए मुझे विजय प्राप्त करनी है। यदि मैंने विजय का उपाय न किया तो शत्रु मुझे निगल जायेंगे, बाधाएँ एक पग भी आगे न बढ़ने देंगी, दुःख निरन्तर कचोटते रहेंगे। इन सब पर विजय पाने के लिए आवश्यक है कि मैं 'हिरण्य' धारण करूँ। 'हिरण्य' सुवर्ण का नाम है। सुवर्ण तेजस्वी होता है, अतः ज्योति या तेज को भी 'हिरण्य' कहते हैं। मैं अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा में 'ज्योति' को धारण करूँगा। शरीर को स्वस्थ, सबल, तेजस्वी बनाऊँगा। मन को शिव संकल्पवाला, अडिग, तेजोमय बनाऊँगा। बुद्धि को त्वरित गति से सही निश्चय पर पहुँचनेवाली, शक्तिशालिनी, भास्वती बनाऊँगा। आत्मा को बलवान, विवेकशील, ज्योतिष्मान् एवं वर्चस्वी बनाऊँगा। अब तक मैं व्यर्थ ही सुवर्ण के आभूषण बनवाकर अंगुली, कलाई, कान आदि शरीर के किसी अंग में पहनकर यह मानता था कि मैंने 'हिरण्य' धारण कर लिया। पर आज मुझे ज्ञात हो गया है कि असली हिरण्य तो ज्योति या तेज है, जिसे अंग–अंग में धारण कर लने से मनुष्य अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। शरीर के एक बहुमूल्य तत्त्व 'वीर्य' को भी शास्त्रकारों ने 'हिरण्य' कहा है। इस 'वीर्य' या 'रेतस्' को अनावश्यक रूप से प्रस्खलित न कर शरीर में धारण कर लेना एंव 'उर्ध्वरेताः' बन जाना ज्योति या तेज की प्राप्ति का एक सफल उपाय है। यह ज्योति, तेज और वीर्य रूप हिरण्य का धारण दीर्घ एवं उत्तम आयु को देनेवाला है, ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करनेवाला है, भौतिक तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य की पुष्टि को देनेवाला है। यह 'औद्भिद' है, बीज का अंकुर जैसे भूमि की परत को फाड़कर ऊपर आ जाता है, वैसे ही यह सब प्रकार की भौतिक और मानसिक रूकावटों को, विविध दुःखों और पीड़ाओं को एवं बाह्य और आन्तरिक रिपुओं को उद्भिन्न करके उत्कर्ष की ओर ले जानेवाला है। यह 'हिरण्य' मेरे अन्दर प्रवेश करे, प्रचुरता और तीव्रता के साथ प्रवेश करे।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्व-ज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

'परम–प्रेम भक्ति' के संदर्भ में सारे आश्रय और आसक्तियों को त्यागकर अनन्य भक्त प्यारे प्रभू से विनय कर रहा है कि अब आओ! दया करके दर्शन दो! तेरे मिलने की आशा ही अब लिये फिरती है?

सुषुप्त प्रकृति में एक नन्हीं–सी सामर्थ्य गति उत्पन्न करने वाले प्रभु! मैं तो एक परमाणु रूप भी नहीं। मुझे संतोष देने में तुझे क्या श्रम लगेगा।

ऐसा विचार करते–करते भक्त के नेत्र जल बरसाने लगते हैं। रोते–रोते हृदय की मैल धुल जाती है और निर्मलता, पवित्रता, निरभिमानता, दीनता, सहनशीलता और दयालुता का एक अद्भुत प्रवाह हृदय से बहने लगता है।

अब अगाध प्रेम शिकायत का रूप लेने लगता है। शिकायत या रूठने से भी आगे बढ़कर एक भक्त तो दावा ही दायर करने लगा। भक्त को इतना अधीर नहीं होना होगा। आवश्यकता यह है कि भक्त (साधक) अपना हृदय भगवान् के अर्पण कर दे।

स्वामीजी ने कहा कि इतना और जान लें कि भक्ति के भी कितने ही रूप सामने आते हैं यथा– तामसी, राजसी, सात्विकी,। गीता में आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चार भक्त बताये हैं। इसके अतिरिक्त भक्ति को साधनारूपा और प्रमलक्षणा भक्ति भी बताया गया है। सोच–विचार और जिज्ञासापूर्वक की हुई साधनरूपा भक्ति ज्ञान का प्रकाश करती है। प्रेमलक्षणा भक्ति ज्ञान–नदी के पार ले जाकर प्रभु के घने वन में प्रवेश करा देती है। ऐसे भक्त मुक्ति नहीं चाहते, वे चाहते हैं विरह–अग्नि, जिसमें वे गीली लकड़ी की तरह जलते रहें।

भक्ति का दूसरा रूप है जिसमें भक्त ज्ञानवान् होकर भक्ति में तत्पर होता है। वह एक लक्ष्य को भक्ति में संलगन होता है। उसे मालूम है कि भक्ति करने, शुभ कार्य करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये ही यह जन्म मिला है। इसे ही ज्ञान, कर्म और उपासना कहते हैं।

अब आगे....

प्रभु–दर्शन के मन्दिर

अब एक भक्ति और भी है जिसमें भक्त भगवान् की भक्ति करते–करते जब प्रभु–प्रेम का आस्वाद लेने लगता है और उसे अपने चारों ओर अपने प्यारे प्रभु ही की महिमा दृष्टिगोचर होने लगती है, साथ ही वह यह भी प्रत्यक्ष देखता है कि प्यारे के दर्शन मानव–हृदय में हो रहे हैं, वह तब हरएक मनुष्य को मानव–शरीर नहीं समझता अपितु प्रभु–दर्शन करने का मन्दिर समझता है। कारण यह है कि मानव–शरीर ही ब्रह्मपुरी है। यहीं पर भक्त और भगवान दोनों इकट्ठे रहते हैं; अज्ञान एवं माया का एक आवरण ही बीच में है उस पर्दे को हटाया और प्रेमी तथा प्रियतम दोनों आमने–सामने हो जाते हैं। ऐसा मिलाप मानव–देह में ही होता है। यह अटल सत्य अनुभव करके भक्त अब किसी भी मनुष्य से घृणा नहीं करता, अपितु उसे प्यार करने लगता है। भक्त हरएक मनुष्य को प्रभु का मन्दिर जानकर उसके प्रति श्रद्धा, प्रेम, भक्ति की भावना करता है। इस प्रभु–मन्दिर में यदि किसी प्रकार की कोई त्रुटि है तो उसे दूर करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। पूरा तप, पूरा प्रेम, पूरी भक्ति से भक्त से भक्त का हृदय अपने लिए दुःखित नहीं होता, प्राणिमात्र के लिए चिन्तित होता है। उसकी भक्ति मुक्ति के लिए नहीं, अपितु दुःखी प्रणियों के दुःख दूर करने के लिए होती है वह अपने प्यारे सामर्थ्य, शक्ति, बल, बुद्धि की याचना करता है तो इसलिए कि पीड़ित जीवों की पीड़ा को दूर कर सके। कुछ भक्त राज्य, धन तथा संसारी वैभव के लिए भक्ति करते हैं, कुछ स्वर्ग में पहुँचने के लिए, कुछ इन सबसे ऊपर ऊठकर मोक्ष में जाने के लिए। इन तीनों प्रकार के भक्तों से निराले चौथे प्रकार के भक्त वे हैं जो न राज्य, न स्वर्ग, न मुक्ति चाहते हैं। वे चाहते क्या है?

न त्वहं कामये राज्यं न स्वग नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

'मैं राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग भी नहीं, मोक्ष भी नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ–दुःख से सन्तप्त प्राणियों के क्लेश का नाश।'

राजा रन्तिदेव के शब्दों में:

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टसिद्धियुक्ताम पुनर्भवां वा।
आर्तिर्तप्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।।

'प्रभो–सर्वेश–सर्वाधार जगदीश्वर! मैं आपे परमगति नहीं चाहता। अष्टसिद्धि या समस्त ऋद्धि भी मुझे नहीं चाहिए। हाँ, आप मुझे मुक्त करें, इसकी मुझे कोई कामना नहीं। आप मेरा निवास प्रणियों के

हृदय में कर दें, जहाँ रहकर मैं अनके सब दुःख भोग लिया करूँ, जिससे वे सब प्राणी दुःखहीन हो जायँ।'

कितनी ऊँची भावना है यह! यह भक्ति की पराकाष्ठा है और निस्सन्देह सर्वोच्च भक्ति यही है। एक कवि की यह प्रार्थना कितनी मार्मिक है:

देव! मुझे ही सब दुख दे दे,
जग–जन सारे सुख पवे।
जो औरों के कलुष–भो हों,
इस जन के ऊपर आवें।।

एक और भक्त इसी भाव को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रकट करता है:

सफल जीवन हो, वर परमात्मन्! तुमसे जो यह पाऊँ,
पराई आग में कूदूँ, पराई मौत मर जाऊँ।
किसी कि हित की खातिर होवें गर इस जिस्म के टुकड़े,
खुशी से खेलते हँसते, में अपने तन को कटवाऊँ।।

क्या ऐसे भक्तों को भगवान् दुःख सागर में पड़ने देता है? नहीं। गीता में स्पष्ट कहा है:

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।

'जो सब प्राणियों के हित में लगे रहते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते है।'

भारत क इतिहास ऐसे भक्तों के प्रेम–गाथाओं से भरा पड़ा है। सनातन वैदिक संस्कृति में यह एक ऐसी उच्चकोटि की भावना है, जिसकी उपमा और कहीं नहीं मिलता। दधीचि, भरत, भागीरथ, शिवि, रन्तिदेव, अम्बरीष, जनक, भीष्म, सती सावित्री, दुर्गा, लक्ष्मीबाई, पद्मिनी, श्री शङ्कराचार्य, कुमारिल भट्ट, गुरू गोविन्दसिंह, समर्थ रामदास, वीर वैरागी, महर्षि दयानन्द और कितने ही ऐसे भक्त हुए हैं, जिन्होंने मुक्ति की उपेक्षा जनता के कष्ट दूर करने और प्राणियों का सुधार करने और उद्धार करने के लिए अपने–आपको कष्ट और तप की भट्टी में डाला। स्वामी दयानन्द घोर तप करके प्रभु–भक्ति में पूर्ण होकर जब दुःखी, पीड़ित जनता को सन्मार्ग दिखलाने के लिए स्थान–स्थान पर भ्रमण करने लगे और अपनों ही से गालियाँ, अपमान लेने लगे तो उनके मित्र कैलाश आश्रम ने उनसे कहा–''दयानन्द! किस टण्टे में पड़ गये हो? आप तो योग तथा भक्ति की उस भूमि पर जा चढ़े थे, जहाँ आप जीवन–मुक्त हो जाते !'' तब महर्षि ने कहा–''कैलाश! इन दुखी जनों को दुःख–सागर में डूबा देशकर मैं अकेला मोक्ष नहीं चाहता। मेरा तो यही मोक्ष है कि मैं संसारी जीवों को सन्मार्ग पर ला सकूँ।

पहले प्रभु की कृपा प्राप्त करो

इन भक्तों की गाथाएँ सुनते हुए एक आवश्यक बात सदा सामने रखना और वह यह कि ऐसा पद ग्रहण करने से पूर्व घोर तप, पूरी भक्ति और पूरी प्रभु–कृपा प्राप्त करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इन सब देवताओं तथा देवियों ने ज्ञान, वैराग्य अभ्यास, भक्ति द्वारा वह स्थिति प्राप्त की, जिससे प्रभु प्रसन्न हो गए, भगवान् की कृपा के पात्र बन गए और जब वर मिलने का समय आया तो इन भक्तों ने मोक्ष की ओर जाने की अपेक्षा पीड़ित संसार का उपकार करना ही अधिक प्रिय समझा।

अपने–आपको पहचाने बिना और फिर भगवान् की दर्शन् पाए बिना जो लोक–सेवा, देश–सेवा या परोपकार के काम में पड़ जाते हैं, वे दूसरों का दुःख तो क्या दूर करेंगे, स्वयं ही दुःखी हो जाते हैं। सूर्य दूसरों को ज्योति (प्रकाश, गर्मी) इसलिए देता है कि वह स्वयं ज्योति, प्रकाश और गर्मी का पुञ्ज है। भला बुझा हुआ दीपक किसी दूसरे बुझे दीपक को कैसे प्रकाशित कर सकता है? पहले प्रभु–भक्ति द्वारा अपने अन्दर सामर्थ्य ले आएँ, तभी इस उच्च कोटि की भक्ति के अधिकारी बन सकेंगे। सामाजिक उन्नति या परोपकार से पहलू आत्मिक उन्नति का आदेश सबने दिया है और महर्षि स्वामी दयानन्द ने विशेष रूप से दिया है। स्वामी जी ने तो राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने वालों, विधान–सभाओं, राज्य–परिषदों के मन्त्रियों, प्रधानमंत्रियों, सदस्यों, राज्य–कर्मचारियों, सबको योगाभ्यास नित्यप्रति करने की आज्ञा दी। उन्हें इस आवश्यक बात का व्यक्तिगत अनुभव भी था कि प्रभु–भक्ति से आत्मदर्शन किये बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती।

जब संवत् 1914 (सन् 1857) में स्वतंत्रता का पहला युद्ध छिड़ा तो स्वामी जी उसकी सफलता देखकर मिर्जापुर तथा काशी होते हुए मध्यप्रदेश के जंगलों में जा निकले। तीन–चार वर्ष नर्मदा नदी के तट पर रहने वाले योगियों की संगति करते रहे, फिर बाद में संवत् 1970 में गुरुवर स्वामी विरजानन्द के पास पहुँचे। वैशाख 1920 तक गुरु से वेद–शिक्षा प्राप्त करते रहे। दक्षिणा देकर फिर प्रचार–हित निकल खड़े हुए। संवत् 1924 में हरिद्वार का कुम्भ था। वहाँ पहुँचकर अपनी पताका गाढ़ी, परन्तु देखा कि उनके सत्य–कथन की ओर कोई ध्यान नहीं देता। समझ गए कि अभी तपस्या में कोई त्रुटि है। तब एक दिन जब महाराज व्याख्यान दे रहे थे तो नेत्र जलपूर्ण हो गए, कण्ठ से आर्त्तनाद निकल पड़ा और ''सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा'' कहकर अपने सारे पुस्तक, बर्तन पीताम्बरी धोतियाँ, रेशमी वस्त्र, दुशाले, नकदी, जो कुछ भी पल्ले था, सब का सब वहीं बाँट दिया; केवल एक कौपीन धारण करके ऋषिकेश पहुँचे और गंगा किनारे–किनारे निकल खड़े हुए और सात वर्षों तक घोर तप करके, प्रभु–कृपा प्राप्त की; समाधि अवस्था में पहुँचकर आत्म–दर्शन पाए। तब गंगा–रज ही उनका बिस्तर था; गंगा के पत्थर ही सिरहाने का काम देते थे; पर्णकुटी या आकाश ही छत होता था। जब देख कि भगवान् ने आशीर्वाद दे दिया है, वे चाहते तो तब मुक्त हो सकते थे, परन्तु संसार के दुःखी जनों का हित उन्हें कर्म–क्षेत्र में ले आया; अब उनके हृदय की जोत जग चुकी थी। आते ही स्वामी जी को सफलता मिलने लगी। इस व्यक्तिगत अनुभव के कारण ही महाराज ने सामाजिक उन्नति से पूर्व आत्मिक उन्नति का आदेश दिया है।

जिस भक्ति का ऊपर वर्णन हो रहा था, इसका स्वरूप तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक आत्म–दर्शन प्राप्त नहीं होते। परमात्मा की कृपा–दृष्टि के बिना आत्म–दर्शन असंभव है।

शुकदेव जी ने यर्थार्थ कहा है:

अकामः सर्वकामी वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजते पुरुषं परम्।।

योगवा. स्क. 2।3।10।13।।

'अकाम हो, सकाम हो, मोक्ष की कामनावाला हो, बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि तीव्र भक्ति–योग द्वारा उस परम–पुरुष का ही भजन करे।

एतावानेन यजतामहि निःश्रेयसोदयः।
भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतिः।।14।

'साधकों के लिए परम कल्याण की बात यही है कि उनकी भगवान् में अचल भक्ति हो और भगवान के भक्तों का उन्हें संग मिले।'

मेरी चाह

भक्ति के और भी कितने ही रूप हैं, सबका वर्णन यहाँ कठिन है। हाँ, एक और रूप का संकेत लाभदायक होगा।

यह भक्ति वह है जिसमें भक्त न मुक्ति की और नही दुःखी जनों के दुःख–नाश की अभिलाषा रखता है, अपितु अपनी और संसारी जीवों की बागडोर भगवान् ही के अर्पण कर देता है। पर बिना इच्छा के तो कुछ होता नहीं। एक भक्त जब यह कहता है। 'प्रभु, तेरी इच्छा पूर्ण हो' तो यह भी तो एक इच्छा ही है। ऐसे भक्त की भी एक इच्छा अवश्य होती है और वह यह है:

प्रभु! आपकी मैं हूँ शरण,
निज चरण–सेवक कीजिए।
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता,
जो आप चाहें दीजिए।।
सिर आँख से मंजूर है,
सुख दीजिए दुःख दीजिए।
जो होय इच्छा कीजिए,
मत दूर दर से कीजिए।।

ऐसे भक्त की यह अभिलाषा अवश्य होती है कि भगवान् सदा मुझे अपने द्वार की चौखट पर पड़ा रहने दे। उसी प्रभु के द्वार पर पड़े–पड़े वर्षों बीत जायँ या जन्म, भक्त उसी की प्रेम–भक्ति में मग्न कभी रो दे, कभी हँस दे, कभी प्रभु–प्रेम के गीत गा दे, कभी चिन्तित होकर काँप उठे कि कहीं इस प्रभु–मिलाप की वाटिका में वियोग की आँधी न आ जाए! ऐसी अवस्था में भक्त या साधक का चित्त भक्तिरस–सुधापान के योग्य हो जाता है, अन्य सारी वासनाएँ धुल जाती हैं। हृदय निर्मल होकर अब सर्वश्रेष्ठ भक्ति सागर में सर्वथा डूब जाने के लिए लालायित हो जाता है। उस भक्त के अब प्राण नाच उठते हैं। उसे प्यारे प्रियतम का आशीर्वाद मिलता–सा अनुभव होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् की ओर से यह आदेश पहुँचा है– 'भक्त! कहो, क्या चाहते हो? जो इच्छा हो वैसा ही होगा।' यह भक्त उत्तर में तब कुछ कहना चाहता है परन्तु अश्रुसिक्त कण्ढ ने स्वर अस्पष्ट कर दिया है। प्रेम से भरपूर पवित्र हृदय ही ने आतुरता के साथ कहा:

मेरी चाही करन की, जो है तुम्हरी चाह।
तो तुम्हरी चाही करौं, यह है मेरी चाह।।
मेरी चाही हो वही, जो हो तुम्हरी चाह।
तुम्हरी अनचाही कभी, मत हो मेरी चाह।।
तुम्हरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख नादान।।

यह भावना प्रभु–कृपा प्राप्त करने का अमोघ साधन है। भक्तितत्त्व से तत्त्वज्ञान का अधिकारी बनने के लिए प्रेम–भरा पवित्र हृदय और अत्यन्त सूक्ष्म कुशाग्र बुद्धि प्राप्त हो जाती है।

प्रभु–कृपा आवश्यक है

निष्कर्ष यह है कि प्रभु–कृपा को प्राप्त करने के लिए अपने–आपको परमात्मा के अर्पण कर देना आवश्यक है, क्योंकि प्रभु–कृपा के बिना मनुष्य तत्त्वज्ञान प्राप्त कर ही नहीं सकता। महर्षि दयानन्द ने लिखा है–''जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देन वाला है।'' महर्षि दयानन्द ने तो यह लिखा है कि जब तक परमेश्वर का अनुग्रह और आत्मा की शुद्धि नहीं होती, तब तक वेदों के अर्थ का भी यथावत्प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता। महर्षि ने यह भी उल्लेख किया है कि भक्त या साधक जब परमात्मा का ध्यान करता है तो प्रभु अपनी कृपा से उन भक्तों के आत्मा में 'बृहज्योति' (बड़े प्रकाश) को प्रकट करता है।

भक्त का यत्न यहीं होना चाहिए कि मैं प्रभु–कृपा का पात्र बन जाऊँ। प्रभु–कृपा का आशीर्वाद ही सब क्षेत्रों में विजय प्राप्त कराएगा। प्रभु–कृपा के बिना तो सारी विद्या, सारे पुरुषार्थ, सारे प्रयत्न निष्फल ही समझने चाहिए।

लाज तिहारे हाथ

पर सर्वसाधारण तथा गृहस्थी इस सीमा तक कैसे पहुँच सकते है? वे तो जीवन–यात्रा की एक–एक आवश्यकता को पूर्ण कराने के लिए अपने भगवान् ही को पुकारते हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' में लिखा है:

''सबसे उत्तम मोक्ष–सुख से लेके अन्न –जल–पर्यन्त सब पदार्थों की याचना

शेष पृष्ठ 4 पर ☞

ऋग्वेद में गुरुत्वाकर्षण

● शिवनारायण उपाध्याय

वेद के भाष्यकारों में केवल स्वामी दयानन्द सरस्वती ही एक ऐसे वेद भाष्यकार हैं जिन्होंने अपने भाष्य के माध्यम से यह बता दिया कि वेद और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है। उन्होंने यह भी बता दिया कि विज्ञान में जो शोध इस युग में हुए अथवा हो रहे हैं उनके विषय में वेद में पूर्व से ही संकेत प्राप्त हैं। जिस सापेक्षता की 1875 ई. में कोई कल्पना भी नहीं करता था। उसकी परिभाषा तो उन्होंने अपने ऋग्वेद भाष्य के प्रथम मण्डल में 164 वें सूक्त के 19 वें मंत्र के भावार्थ में ही कर दी थी। इसी प्रकार ऊर्जा तथा पदार्थ के आपसी सम्बंध को भी उन्होंने ऋग्वेद मडण्ल दो, सूक्त के मंत्र संख्या 6 में बता दिया था जिसको आइन्सटीन से सन्1920 में उद्घाटित किया। इसी प्रकार गुरूत्वाकर्षण के नियम पर अपने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में 'अथाकर्षणानुकर्षण' विषय पर एक अध्याय वे लिख चुके थे। इसमें आर्कषण तथा विकर्षण दोनों सम्मिलित थे। उन्होंने अपना लेख ऋ. 8.1.2.28 के इस प्रसिद्ध मंत्र से प्रारम्भ किया–

यदाते हर्य्यता हरी वावृधाते दिवे दिवे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे।।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उन्होंनें लिखा है कि इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि सब लोकों के साथ सूर्य का आकर्षण और सूर्य आदि लोकों के साथ परमेश्वर का आकर्षण है।(यदाते,) हे इन्द्र परमेश्वर। आपके अनन्त बल और पराक्रम गुणों से सब संसार का धारण आकर्षण और पालन हो रहा है। इस कारण से सब लोक अपनी अपनी कक्षा और स्थान से इधर उधर चलायमान नहीं होते हैं।

यदा ते मारूतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे।।

भावार्थ– इस मंत्र में भी आकर्षण विद्या है। हे परमेश्वर। आपकी जो प्रजा, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय धर्म वाली और जिसमें वायु प्रधान है वह आपके आकर्षण आदि नियमों तथा सूर्य लोक के आर्कषण करके (द्वारा) भी स्थिर हो रही है। जब इन प्रजाओं को आपके गुण नियम में रखते हैं तभी भुवन अर्थात् सब लोक अपनी अपनी कक्षा में घूमते और स्थान में बस रहे हैं।

इसके अगले मंत्र को भी वे आकर्षण का समर्थक बताते हैं।

यदा सूर्य्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारय।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे। ऋ. 8.12.30

भाषार्थ में वे लिखते हैं, 'इस मंत्र में भी आकर्षण विचार है। हे परमेश्वर। जब उन सूर्यादि लोकों को आपने रचा और आपके ही प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं और आप अपने अनन्त सामर्थ्य से उनका धारण कर रहे हैं, इसी कारण से सूर्य और पृथ्वी आदि लोकों और अपने स्वरूप को धारण कर रहे हैं। इन सूर्यादि लोकों का सब लोकों के साथ आकर्षण से धारण होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर सब लोकों का आकर्षण और धारण कर रहा है।'

हमने स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखे गए आकर्षणानाकर्षण के विषय में थोड़ा सा पढ़ा और देखा कि उनका सोच विज्ञान के अनुकूल है। अब हम ऋग्वेद से ही दूसरे मंत्रों द्वारा इस सोच को विस्तार देंगे।' ऋग्वेद का एक प्रसिद्ध मंत्र जो आकर्षण का समर्थन कर रहा है वह इस प्रकार है–

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।। ऋ. 1.35.2

पदार्थ– हे मनुष्यो! जो ज्योतिः स्वरूप रमणीय स्वरूप से (कृष्णेन) आर्कषण से परस्पर सम्बद्ध (रजसा) लोकमात्र के साथ (आ वर्तमानः) आपने भ्रमण की आवृत्ति करता हुआ (भुवनानि) सब लोकों को (पश्यन्) दिखाता हुआ (देवः) प्रकाशमान (सविता) सूर्य देव (अमृतम्) जल वा अविनाशी आकाश आदि (च) और (मर्त्यम्) मरण धर्मा प्राणिमात्र को (निवेशयन्) अपने अपने प्रदेश में स्थापित करता हुआ (आयाति) उदय अस्त समय में आता जाता है सो ईश्वर का बनाया हुआ सूर्य लोक है।

भावार्थ– हे मनुष्यो! जैसे इन भूगोल आदि लाकों में साथ सूर्य का आर्कषण है जो वृष्टि द्वारा अमृत रूप जल को बरसाता और जो मूर्त द्रव्यों को दिखाने वाला है वैसे ही सूर्य आदि लोक भी ईश्वर के आकर्षण से धारण किए हुए हैं।

प्रते महे विदथे शं सिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्।
घृतं न यो हरिभिश्चारू सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं निरः। ऋ. 10.96.1,,

पदार्थ – (ते) इस इन्द्र सूर्य के (हरी) दो अश्वों (धारण और आकर्षण) की (महे) महान् (विदथे) यज्ञ में (प्रशंसिषम्) मैं प्रशंसा करता हूँ। (वनुषः) मेघ का वध करने वाले (ते) इस इन्द्र सूर्य के सम्बन्धी (हर्यतम्) रमणीय (मदम्) सुख की (वन्वे) भगवान् से कामना करता हूँ। (यः) जो (हरिभिः) जल आदि को हरण करने वाली किरणों के द्वारा (चारू) धारण करने योग्य (घृतम् न) घृत के समान उत्तम जल को (सेचते) सींचता है। (हरिवर्यसम्) चमकने वाले रूप से युक्त (त्वा) इस सूर्य की प्रशंसा में (मे) मेरी (गिरः) वाणियाँ (आ विशतु) सर्वत्र व्याप्त होवें।

भावार्थ– सूर्य की धारण और आकर्षण गुणों की मै यज्ञादि के महान् अवसरों पर प्रशंसा करता हूँ। मेघ का वध करने वाले इस सूर्य के द्वारा सबको दिए जाने वाले सुख की प्राप्ति की परमेश्वर से याचना करता हूँ।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यंमद इन्द्र रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे।। ऋ. 10.96.6

भावार्थ–हे कमनीय धारण और आकर्षण गुण सबके सुख के साधन, वज्र के स्वामी, प्रशस्य सूर्य को हर्षदायक रमणीय संसार रथ में धारण करते हैं। उस सूर्य के लिए इसके प्रकाश से भासमान विविध लोक प्रभूत प्रातः मध्य और सायं सवनों को धारण करते हैं।

यत्तुदत् सुर एव शं व्रड्.कू वातस्य पर्णिना।
वहत् कुत्समार्जुनेयं शत्क्रतुरत्सरद्
गन्धर्वमस्तृतम् ।। ऋ. 8.1.11

भावार्थ–गतिशील इस सूर्य में आकर्षण तथा विकर्षण दो शक्तियाँ पाई जाती हैं, उनका धाता तथा निर्माता एक मात्र परमात्मा ही है और सूर्य जैसे कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड उसके स्वरूप में ओतप्रोत हो रहे हैं। इसलिए मंत्र में उसको 'शतक्रतुः' सैकड़ों क्रिया वाला कहा है। सूर्य को 'गन्धर्व इसलिए कहा है कि पृथ्वी आदि लोक उसी की आकर्षण शक्ति से ठहरे हुए हैं।

अब एक मंत्र और देकर विषय का समाना करते हैं।

व्यस्तम्नाद्दोदसी मित्रो अद्भतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
विचर्म्मणीय धिषणे अवर्त्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम्।। ऋ. 6.8.3

भावार्थ– हे मनुष्यों! जो जगदीश्वर से बनाया गया यह सूर्य जैसे चर्म रोगों को वैसे आकर्षण के लोकों को धारण करता है। तथा नियम से चलाता और चलता है। सूर्य ने ही अन्तरिक्ष और पृथ्वी को धारण किया है। इस प्रकार हमने देख लिया है कि वेद में आकर्षण और विकर्षण दोनों के विषय में जो कुछ कहा है वह विज्ञान के अनुकूल है। इतिशम्।

73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी
कोटा (राजस्थान) 324009

☞ पृष्ठ 3 का शेष

तत्त्व-ज्ञान

मनुष्यों को केवल ईश्वर ही से करनी चाहिए।''

वेद में स्वयं भगवान् ने यह आज्ञा दी है– ''जैसे पिता को सन्तान पुकारती है, वैसे ही मुझे पुकारो। मैं ही सारे जगत् का पिता हूँ। मैं ही सन्तान–जगत् का कारण और सब धनों का विजय कराने वाला हूँ और मैं ही दाता हूँ।''

तब तुझ ही से भगवन्! जीवन यात्रा की सामग्री, अच्छा उत्तम राज्य, कल्याणकारी धन, स्वास्थ्य–प्रद अन्न तथा ऐश्वर्य के अतिरिक्त वह शान्ति माँगते हैं जो संसार में आप ही से प्राप्त हो सकती है। करुणा के सागर! हम तुच्छ जीव हैं, अल्पज्ञ हैं, बुद्धि भी निर्बल है और यात्रा बड़ी कठिन है। आपकी सहाय और कृपा के बिना न तो संसारी कार्यों में सफलता मिल सकती है और न ही तेरे दर्शन की सामर्थ्य प्राप्त हो सकती है। हे दया के भण्डार! हे दाता! हमें दे वह ज्योति, वह प्रज्ञा, वह शक्ति, जिसे पाकर हम तेरी आज्ञा पालन कर सकें और तेरे समीप आ सकें। हे सूर्य के सदृश प्रकाशवान् प्रभो! कितना भयंकर अन्धकार विषयों, प्रलोभनों, रोगों तथा चिन्ताओं की घनघोर घटाओं के कारण हमारे मार्ग में छाया है! कृपा–सागर! थोड़ा प्रकाश डालकर इन सबको छिन्न–भिन्न कर दीजिए। आप तो सर्व–शक्तियों और प्रकाशों के स्वामी हैं। महाराज! ऐसी दया का हाथ सिर पर रखो कि ये सारे अन्धकार हमें सत्पथ से भटका न दें। हम तेरे ही दर की ओर बढ़ते चले जाएँ और प्यारे आपके बिना यह कृपा और करेगा भी कौन?

दर पर तेरे आन खड़े हैं, बने सवाली नाथ!
अपना और न कोई सहारा, लाज तिहारे हाथ।।

ओ दाता! तेरे–जैसे दयालु दाता से भिक्षा न मिली तो फिर हम तो तेरे दर पर पड़े भूखे ही मर जाएँगे। और तो कोई तेरे–जैसा दाता है नहीं। किसके दर पर जाए? तू ही अपनी कृपा–दृष्टि से हमें तृप्त कर! चाहते हैं तेरी करुणा, तेरी कृपा, तेरी दया। बस, इतनी–सी भीख मिल जाए तो फिर तेरा प्रेम हमें मिला ही है। तेरे एक कृपा–कटाक्ष से मिल जाता है उत्साह, साहस धैर्य और कष्टों–क्लेशों की भड़कती ज्वालाओं में भी शान्त रहने का सामर्थ्य। प्रभो! तब सांसारिक चिन्ताएँ सता न सकेंगी। तब तेरा भक्त जान जाता है कि:

है तुझे बटोही चिन्ता किसकी, क्यों है भरमाया?
जो मुर्झाया वह फूला, जो फूला वह मुर्झाया।।

प्यारे! फिर तेरे दर्शन भी सुलभ हो जाते हैं। तेरी कृपा–दृष्टि होते ही तेरा सुन्दर रूप संसार की हर वस्तु में चमकने लगता है। तू ही तू..... तू ही तू की ध्वनि हर ओर सुनाई देने लगती है। ठीक ही तो है:

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

वैदिक विज्ञान के मिथुन

● कृपाल सिंह वर्मा

माता–पिता के जोड़े को मिथुन कहते हैं। यही प्राणिवर्ग के क्रम को बनाए रखता है। इसके ही कारण सन्ततिक्रम चलता रहता है। प्रकृति की दिव्य शक्तियाँ भी जोड़े के रूप में पाई जाती हैं। इनके मिथुन रूप के कारण ही सृष्टि चल रही है तथा चलती रहेगी।

दो मिथुन प्रमुख रुप से निम्न हैं।

1. अश्विनौ (ध्वनि उत्पन्न करने के कारक)
2. मित्र–वरुणा (Positive तथा Negative charge)
3. द्यावा–पृथिवी (Energy-Matter)
4. सूर्य–चन्द्र
5. प्राण–अपान
6. शीतता–उष्णता
7. अन्धकार–प्रकाश
8. अग्नि–सोम
9. दिन–रात
10. उत्तरायण–दक्षिणायन आदि

वैदिक विज्ञान ने संसार में पाए जाने वाले सभी पदार्थों को पाँच भागों में विभक्त कर दिया है जो सूक्ष्म से स्थूल के क्रम में निम्न प्रकार हैं–

1. आकाश 2. वायु 3. तेज 4. आपः 5. पृथिवी

1. आकाश का गुण शब्द (ध्वनि) है तथा शब्द का ज्ञान केवल श्रोत्र द्वारा होता है। 2. वायु का गुण स्पर्श है तथा स्पर्श का ज्ञान त्वचा द्वारा होता है। 3. तेज का गुण रूप है तथा रूप का ज्ञान चक्षु द्वारा होता है। 4. आपः का गुण रस है तथा रस का ज्ञान रसना द्वारा होता है।

5. पृथिवी तत्त्व का गुण गन्ध है तथा गन्ध का ज्ञान नासिका द्वारा होता है।

इस प्रकार वैदिक विज्ञान में पदार्थों का वर्गीकरण ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर किया गया है।

प्रत्येक स्थूल पदार्थ में अपने से सूक्ष्म पदार्थों के गुण अतिरिक्त रूप से पाए जाते हैं। सूक्ष्म तत्त्वों से ही स्थूल तत्त्वों का निर्माण होता है।

1. सबसे सूक्ष्म पदार्थ होने के कारण आकाश में केवल अपना एक गुण शब्द पाया जाता है।
2. वायु में अपने गुण स्पर्श के अतिरिक्त आकाश का शब्द गुण भी पाया जाता है।
3. तेज तत्त्व में अपने गुण रूप के अतिरिक्त आकाश का शब्द तथा वायु का स्पर्श गुण भी पाया जाता है।
4. आपः तत्त्व में अपने गुण रस के अतिरिक्त तेज का रूप, वायु का स्पर्श, तथा आकाश का शब्द गुण भी पाया जाता है।
5. पृथिवी तत्त्व में अपने गुण गन्ध के अतिरिक्त जल का रस, तेज का रूप वायु का स्पर्श तथा आकाश का शब्द गुण भी पाया जाता है।

निम्नलिखित चार्ट से यह बात समझ में आ जाती है–

पदार्थ	गुण
आकाश	शब्द (ध्वनि)
वायु	स्पर्श, शब्द
तेज	रूप, स्पर्श, शब्द
आपः	रस, रूप, स्पर्श, शब्द
पृथिवी	गन्ध, रस, रूप,स्पर्श, शब्द

इस प्रकार वैदिक विज्ञान में पदार्थों का वर्गीकरण पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है। आँइस्टाईन ने कहा कि भविष्य में Matter तथा Energy का भेद समाप्त हो जाएगा, तो फिर किसे Matter कहेंगे तथा किसे Energy ऐसा संकट वैदिक विज्ञान में कभी नहीं आएगा। तथा यह भी है कि

Matter = आपः (गन्धहीन पदार्थ) + पृथिवी (गुन्ध युक्त पदार्थ)

Energy = तेज (Light) + वायु = Heat & Electricity)

अब वैदिक विज्ञान में पाए जाने वाले मिथुनों पर विचार करते हैं।

1. अश्विनौ– वैशेषिक दर्शन में महर्षि कण्व ने तर्क सहित सिद्ध किया है कि शब्द आकाश का गुण है। जिस प्रकार पानी में तरंगें चलती हैं उसी प्रकार आकाश में स्थित परमाणुओं में शब्द तंरगें चलती हैं। शब्द वहन करने वाले कारक को अश्विनौ कहते हैं। ये शब्द तंरगों की दो स्थितियाँ है। शब्द तरंग भी एक उच्चतम तथा एक निम्नतम बिन्दु होता हैं। तरंग कम्पन इन दो बिन्दुओं के मध्य में ही होते है। ये असमान कम्पन अनेक होते है। इस प्रकार आकाश तत्त्व का गुण है शब्द तथा शब्द को वहन करने वाला कारक है आश्विनौ।

2. मित्र–वरूणा– आकाश से स्थूल तत्त्व वायु है। वायु अणुओं की गतिशीलता के कारण ही वायु को प्राण कहते हैं। जब वायु किसी रासायनिक अथवा भौतिक क्रिया से प्रकट होती है तो इसके दो रूप हो जाते हैं–

1. मित्र (Positive charge)
2. वरुण (Negative charge)

(अगस्त्य संहिता के चार श्लोकों से यह बात सिद्ध हो गई है।) जब हवा शरीर रुपी पिडं में प्रवेश करती है तो इसकी दो गति हो जाती हैं। 1. शरीर में अन्दर जाना 2. शरीर के बाहर आना। वैदिकविज्ञान में ऊष्मा (Heat) को भी वायु तत्त्व के अन्तर्गत माना गया है। तापक्रम घटने की स्थिति को मित्र तथा तापक्रम बढने की स्थिति को वरुणा कहते हैं। या हमारे शरीर से कम तापक्रम को मित्र तथा अधिक तापक्रम को वरुणा कहते हैं। इस मित्र तथा वरुणा के जोड़े के कारण ही संसार चल रहा है। तापक्रम घटता चला जाए अथवा बढ़ता चला जाए। दोनों स्थितियाँ जीवन को नष्ट करने वाली हैं। मित्र–वरुणा को वर्षा का देवता भी कहते हैं, क्योंकि वरुणा (उच्च ताप) पानी को आकाश में ले जाता है तथा मित्र आप को शीतल कर पानी बरसाता है।

प्राण–अपान– वायु परमाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ने की दशा को प्राण, तथा क्रियाशीलता घटने की दशा को अपान कहते है। सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पाई जाने वाली हर वस्तु में प्राण का संचार करती हैं। गतिशीलता का एक मात्र कारण प्राण है। वायु कारणों की क्रियाशीलता से Heat तथा अत्यन्त क्रियाशीलता से तेज अर्थात् प्रकाश का निर्माण होता है।

वैदिक विज्ञान के अनुसार अग्नि सोम को जन्म देती है तथा सोम अग्नि को जन्म देता है। पृथ्वी पर पाए जाने वाला सभी प्रकार का ईंधन अग्नि से उत्पन्न होता है। बाद में यही ईंधन जलकर हमें अग्नि प्रदान करता है। ईंधन सोम का एक रूप है।

द्यावा–पृथिवी– द्यू लोक अर्थात सूर्य लोक में उत्पन्न होने वाले दो ही तत्त्व हैं–

1. वायु (Electricity तथा Heat)
2. तेज (light Rays)

इन्हें वैदिक विज्ञान में द्यावा तथा आधुनिक विज्ञान में Energy कहते हैं।

पृथ्वी पर पाए जाने वाले गन्धयुक्त पदार्थों को पृथिवी तत्त्व कहते हैं तथा इन दोनों का संयुक्त नाम भी पृथिवी तत्त्व है जिसे आधुनिक विज्ञान की भाषा में Matter कहते हैं। किसी Engine को चलाने के लिए द्यावा –पृथिवी (Energy matter) दोनों की आवश्यकता होती है।

अग्नि–सोम– अग्नि तापक्रम को बढ़ाती है सोम तापक्रम को घटाता है। संसार में दोनों ही प्रकार के पदार्थ पाए जाते हैं। इसी प्रकार दिन तापक्रम को बढ़ाता है तथा रात्रि तापक्रम को घटाती है। ''अप्सु शीतता।'' यह वैशेषिक दर्शन का सूत्र है। आपः अर्थात् पृथ्वी में पाए जाने वाले गन्धहीन तथा गन्ध युक्त पदार्थों का स्वभाव शीतल होता है। इनमें स्थित अग्नि तत्त्व की उपस्थिति में ये उष्ण प्रतीत होता है। यदि लोहे के एक टुकड़े से सारी अग्नि निकाल ली जाय तो यह अपनी स्वभाविक शीतलता को प्राप्त हो जाता है। पृथिवी का स्वभाव शीतल होने के कारण यह सोम है तथा सूर्य का स्वभाव उष्ण होने के कारण यह अग्नि है।

पृथ्वी पर स्थित पेड़–पौधे सूर्य की अग्नि से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। सूर्य की जो उष्मा निर्माण कार्य में लगती है उससे पृथ्वी का तापक्रम नहीं बढ़ता। इसलिए औषधियों को सोम कहते हैं।

वैदिक विज्ञान के अनुसार अग्नि सोम को जन्म देती है तथा सोम अग्नि को जन्म देता है। पृथ्वी पर पाए जाने वाला सभी प्रकार का ईंधन अग्नि से उत्पन्न होता है। बाद में यही ईंधन जलकर हमें अग्नि प्रदान करता है। ईंधन सोम का एक रूप है।

यदि ब्रह्मांड में केवल ताप बढ़ाने को साधन होते तो यह जलकर राख हो जाता और यदि केवल ताप घटाने के साधन होते तो यह पत्थर हो जाता। अग्नि तथा सोम के उचित सामंजस्य से ही पृथ्वी पर जीवन उपयोगी ताप स्थिर रहता है।

वैदिक साहित्य में सोम शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थों में किया गया है। सोम का अर्थ परमेश्वर, राजा, औषधि, चन्द्रमा, सूर्य, जल, ऐश्वर्य हावि आदि अनेक अर्थों में किया गया है।

सोम निर्माण के समय अग्नि तत्त्व को ग्रहण कराता है तथा विखडंन के समय अग्नि छोड़ता है। सूर्य के अन्दर जिस पदार्थ के जलने से अग्नि पैदा होती है। उसे सोम कहते हैं।

ब्रह्मांड में पाई जाने वाली प्रत्येक क्रियाशीलता का कारण प्राण है। परन्तु प्राण चेतन का गुण है जड़ (Lifeless) का नहीं।

चेतन पदार्थ केवल दो हैं

1.परमात्मा 2. आत्मा

परमात्मा एक है आत्मा अनेक हैं।

परमात्मा सर्वज्ञ है आत्मा अल्पज्ञ है।

परमात्मा ब्रह्मांड का अधिकारी है तथा आत्मा अपने शरीर का अधिकारी है।

अब प्रश्न यह है कि प्रकृति जड होने के कारण प्राणहीन है तो फिर इसमें गति कहाँ से आ गई। इसका उत्तर है कि प्रकृति रुपी घड़ी में परमात्मा अपनी असीम शक्ति से चाबी भरता है। यह चाबी खुलती रहती है तथा सृष्टि चलती रहती है। जब यह चाबी समाप्त हो जाती है तो प्रलय हो जाती है।

अनीश्वरवादी विज्ञान कभी भी सृष्टि की पूर्णरूप से व्याख्या नहीं कर सकता। God Particle भी परमात्मा द्वारा भरी गई शक्ति का अंशमात्र है।

फोन न. 9927887788

होलिका दहन क्यों? आओ जानें

● डॉ. गंगा शरण आर्य

संसार के समरांगण में जूझ रहे मनुष्यों को अर्थात् संसार रूपी दुःख सागर में जूझते हुए मानवों को नवीन स्फुर्ति व नूतन उल्लास प्रदान करने के लिए हर वर्ष पर्व अर्थात् त्यौहार आते हैं तथा हमारे अन्दर आलस्य या कोई कमजोरी हो तो उसे दूर हटाया करते हैं। भारत पर्वों का देश है। विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में मनाए जाने वाले पर्वों की संख्या अधिक है। सर्वप्रथम तो पर्व शब्द का अर्थ ही आप पाठकगण समझ लीजिए–**''पूरयति जनान् आनन्देन इति पर्व''** अर्थात् जो लोगों में आनन्द को भर दे, खुशियों को भर दे वही पर्व है। भारतीय मनीषी व दर्शन शास्त्र मनुष्य के जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखते हैं। विष्णु शर्मा की विश्वविख्यात नीति–कथा पुस्तक 'पंचतन्त्र' में एक जगह श्लोक आता है– **अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।**

यह मेरा है, यह पराया इस प्रकार का चिन्तन संकुचित व्यक्तियों का ही हो सकता है। किन्तु उच्च विचारों व भावनाओं वालों के लिए तो सम्पूर्ण भूमण्डल के प्राणी उनके कुटुम्ब अर्थात् परिवार के सदस्य हैं, सारा संसार उनका परिवार है। भारत में इस प्रकार के उच्च विचारों व आशावादी दृष्टिकोण के कारण ही यहाँ पर्वों की अधिकता है और इनको मनाने का उद्देश्य यह भी है कि हमारे अंदर सदैव उत्साह बना रहे और हम कर्तव्यकर्मों के प्रति सचेत रहते हुए समता बनाए रखें। भारतीय पर्वों में सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे प्रकृति व ऋतुओं पर आधारित हैं, ऋतुओं के परिवर्तन के साथ–साथ पर्व आते रहते हैं जिनमें होली भी प्रसिद्ध है। इसे नवशस्येष्टि पर्व भी कहा जाता है। हिन्दुओं के पंचांग के अनुसार होली भारतीय सम्वत वर्ष का अंतिम त्यौहार है। यह फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। तो आईए! इस पर्व के बारे में निम्न विषयों द्वारा और अधिक जानकारी प्राप्त करें।

होली के विषय में प्रचलित भ्रांतिपूर्ण कथा

होली भारत के प्रसिद्ध त्यौहारों में से एक है। होली के विषय में प्रचलित कथा (पद्म पुराण उत्तर खण्ड अ. 238 श्लोक 32) के अनुसार इस प्रकार है। एक हिरण्यकशिपु नामक नास्तिक दैत्य हुआ है। उसकी बहन का नाम होलिका था, जिसे वरदान था कि वह आग में नहीं जलेगी। हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद आस्तिक, ईश्वर भक्त था। वह विष्णु का उपासक था और हिरण्यकशिपु शिव का उपासक था। प्रह्लाद को हिरण्यकशिपु त्रिलोचन शिव की पूजा करने और विष्णु को शत्रु बताकर उसकी भक्ति न करने के लिए कहते थे। परन्तु प्रह्लाद कहता था–**कथं पाखण्डमाश्रित्य पूजयामि च शंकरम्।** अर्थात् मैं पाखण्ड का आश्रय लेकर शंकर की पूजा क्यों करू? मैं तो विष्णु की ही पूजा करूँगा। (पद्म पुराण उत्तरखण्ड श्लोक 45) हिरण्यकशिपु को अपने और अपने पुत्र के बीच की यह विषमता खटक रही थी इसलिए उसने अपनी बहन होलिका से उसे गोद में लेकर आग में बैठने को कहा। वह आग में बैठ गई और इस प्रकार होलिका जल गई और विष्णु का भक्त होने से। प्रह्लाद बच गया। होलिका की स्मृति में होली का त्यौहार प्रतिवर्ष मनाया जाता है जो नितान्त मिथ्या है। मन गढंत है।

समीक्षा

कुछ लोग तथाकथित होली से सम्बन्धित कहानी को मिथ्या नहीं ईश्वर की कृपा मानते हैं। यदि यह कथा सत्य है तो बताओ कि यदि होलिका को अग्नि से न जलने का वरदान प्राप्त था तो फिर भी वह जल क्यों जाती है? इससे पूर्व हिरण्यकशिपु को अपने पुत्र को इस प्रकार छल, कपट से मारने की क्या आवश्यकता थी? वह तो निर्मम तानाशाह था। वह स्वयं उसकी हत्या कर सकता था या करा सकता था अतः घटनाक्रम जिस प्रकार मोड़ लेता है और फिर उसे होलिकोत्सव से जोड़कर देखने के लिए हमें प्रेरित और विवश किया जाता है वह न तो विश्वसनीय है और ना ही सत्य है। यह बात मिथ्या ही नहीं असम्भव भी है कि होलिका अग्नि में जल गई और प्रह्लाद बच गया। क्योंकि अग्नि ऐसा तत्त्व है जिसका स्वभाविक गुण ही जलाना है अर्थात् अग्नि का धर्म जलाना है। उसमें जलने के लिए कोई भी बैठ जाए, चाहे वह आस्तिक हो अथवा नास्तिक, क्रूर हो अथवा दयावान हो वरदानी हो अथवा अभिशापी, और चाहे होलिका हो अथवा प्रह्लाद। अग्नि का धर्म जलाना है तो वह तो जलाएगी ही। वह कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ती। और भी अग्नि जड़ होने से यह नहीं जानती कि प्रह्लाद अस्तिक है इसे न जलाऊँ। जिस प्रकार सूर्य जड़ होने से अपना प्रकाश सम्पूर्ण संसार के जीवों को समान रूप से देता है। इसी प्रकार अग्नि भी कभी अपने धर्म से नहीं गिरती। चलो यदि मान लें कि 'प्रह्लाद' बच गए और 'होलिका' जल गई। तो यह विचार करने की बात है कि भक्त प्रह्लाद को होलिका द्वारा जलाने का प्रयास गलत था या सही। यदि गलत था तो होलिका को माता क्यों कहते हैं और उसकी जय क्यों बोलते हैं? यदि जय ही बोलनी है तो महारानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगना की जय बोलो जिसने देश, धर्महित बलिदान दिया। इसके अलावा उस माता की पूजा अथवा सत्कार करो, जय बोलो जिसने अनेक कष्ट सह करके तुम्हें जन्म दिया। स्वयं गीले में सोकर तुम्हें सूखे में सुलाया और तुम्हारा पालन पोषण किया। भला होलिका ने तुम्हारे लिए क्या किया? किया तो सिर्फ अपने भतीजे 'प्रह्लाद' को जलाने का प्रयास। फिर उसकी जयघोष क्यों? तुम्हारे बाप, दादा परदादा इत्यादि मरने पर जहाँ जलाए गए उस स्थान का नाम शमशान है। जहाँ होलिका जलकर भस्म हुई थी वह स्थान भी शमशान हुआ तो आप लोग कभी शमशान में अपने मरे हुए बाप–दादा इत्यादि की स्मृति में तो परिक्रमा देने नहीं गए। उनकी तो कभी जयघोष नहीं की जबकि उन्होंने तुम्हारा पालन–पोषण किया, शिक्षा–दीक्षा में हर प्रकार प्रयास किया, तुम्हारा निर्माण किया धन–सम्पत्ति तुम्हारे लिए छोड़ गए तब भी शमशान में कभी उनके लिए परिक्रमा व जयघोष न हीं करने गए तो होलिका ने तो तुम्हारे लिए किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं किया। फिर उसकी परिक्रमा व जयघोष क्यों करते हो? आईये मनगढ़त कहानी छोड़कर सत्य की खोज करें।

किसी भी अनाज के ऊपर की पर्त को होलिका कहते हैं। जैसे चना, मटर, गेहूँ, जौ की गिद्दी की ऊपर वाली पर्त। इसी प्रकार चना, गेहूँ , मटर, जौ की गिद्दी (गिरी) को प्रह्लाद कहते हैं। होलिका को माता इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह चना इत्यादि का निर्माण व रक्षा करती है। **'माता निर्माता भवति'** यदि यह पर्त अर्थात् होलिका न हो तो चना मटर रूपी प्रह्लाद का जन्म नहीं हो सकता और भी जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को किसी भी आपत्ति से बचा लेती है और यदि अग्नि में जलना भी पड़े तो बच्चे को बचाकर स्वयं को आहुत करने के लिए तत्पर हो जाती है। इसी प्रकार चना, मटर, जौ व गेहूँ जब अग्नि में भुनते हैं तो वह होलिका अर्थात् गेहूँ व जौ इत्यादि का ऊपरी खोल पहले जलता है और अंदर की गिरी सुरक्षित रहती है अर्थात् प्रह्लाद बच जाता है। उस समय प्रसन्नता से उस माता की जयघोष की जाती है। अतः प्रह्लाद रूपी गिरी को बचाकर अपने को आहुत करने के कारण होलिका को माता कहा जाता है।

होली की पुरातन परंपरा एवं आधुनिक विकृत स्वरूप

भारतवर्ष के प्राचीन समाज में होली मनाने की प्राचीन परंपरा से वर्तमान की यदि तुलना की जाए तो यह अत्यंत निम्न कोटि की ही परंपरा कही जाएगी। प्राचीन काल में ऋषि लोग इस पावन पर्व पर विशाल यज्ञों का आयोजन किया करते थे। इन विशाल यज्ञों में सर्वजन कल्याणार्थ आहुतियाँ अर्पित की जातीं थीं। यही विशाल यज्ञ धीरे–धीरे सारे गाँवों और नगरों के सामूहिक यज्ञ बन गए। पुनश्चः इन सामूहिक यज्ञों ने पुराणकाल के भारतीय पतनकाल में होलिका दहन का स्वरूप लिया। इस काल में भी यह बात अच्छी रही कि सारा गाँव एक ही होलिका का दहन करता था। और कोई ब्राह्मण कुछ न कुछ मंत्रों का उच्चारण कर वातावरण को अच्छा बनाने का प्रयत्न करता था। इसके पश्चात् यह प्रक्रिया भी क्षीण से क्षीणतर होती चली गई। जिसने आज का विकृत और घिनौना स्वरूप ले लिया। आजकल तो गाँवों में सारे गाँव की एक होली नहीं जलती, अपितु मुहल्ले–मुहल्ले की अलग–अलग होली जलती है। यह प्रवृत्ति हमारी विखंडित सोच की सूचक है। कृति में विखंडन, वृत्ति के विखण्डन का परिणाम है। होली तो समाजवाद की दिशा में हामा ऋषि पूर्वजों द्वारा उठाया गया एक सराहनीय पग था। आज यह पर्व समाजवाद के स्थान पर विघटन के बीज बो रहा है। व्यक्ति ईर्ष्या और द्वेष की घृणित वृत्ति को इस पर्व पर अग्नि को समर्पित कर हृदय की शुद्धता और पवित्रता पर ध्यान केन्द्रित करता था। इस प्राचीन परंपरा के स्थान पर आजकल व्यक्ति ईर्ष्या और द्वेष के सर्प को पूरे वर्ष दूध पिलाता है और होली आने तक उसे पूर्ण रूपेण पाल–पोसकर नवयुवक बना डालता है। यौवन की मदोन्मत्तता उसे किसी से गले मिलने को नहीं अपितु किसी का गला काटने के लिए प्रेरित करती है। अतः आज के दूषित परिवेश में इस पर्व की पावनता को मानवता की प्रतिशोध की भावना ने इस प्रकार विषैला बना डाला है। यह पर्व हमें तोड़ने की नहीं जोड़ने की शिक्षा देता है। इसलिए हे मानव! गला काटने का घिनौना खेल छोड़, इस पर्व के माध्यम से सामाजिक समरसता की स्थापना में सहायक बन। इसी से तेरे जीवन का कल्याण होगा।

होली का वास्तविक स्वरूप एवं वैज्ञानिक रहस्य

इस पर्व का प्राचीनतम नाम वासन्ती नव शस्येष्टि है। वासन्ती–वसन्त ऋतु में, नव–नए, शस्य–अनाज, ईष्टि–यज्ञ। अर्थात वसन्त ऋतु के नए अनाजों से किया हुआ यज्ञ, परन्तु होली शब्द होलक का अपभ्रंश है अर्थात् बिगड़ा हुआ स्वरूप है। उदाहरण स्वरूप ऐतिहासिक ग्रंथ रामायण के कुछ विशेष तथ्य जिनमें मिलावट की गई है। यहाँ बताता हूँ:– ''सीता जी की माता का नाम 'सुनैना धरणी' था।'' मगर कुछ धूर्त पेटार्थी ब्राह्मणों के द्वारा धरणी की जगह 'धरती' करके जनकपुत्री सीता को गाजर, मूली की तरह धरती से उत्पन्न बताकर इतिहास

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

डॉ. भवानीलाल भारतीय को स्वामी श्रद्धानन्द सम्मान

● **डॉ. गौरव मोहन माथुर**

लाला दीवानचंद ट्रस्ट नई दिल्ली ने वैदिक विद्वान डॉ. भवानीलाल भारतीय को स्वामी श्रद्धानन्द सम्मान प्रदान करने का निर्णय लिया है। ट्रस्ट से प्राप्त पत्र. में कहा गया है कि ट्रस्टियों के बोर्ड ने वरिष्ठ साहित्यकारों को विभिन्न क्षेत्रों में उनके जीवनपर्यन्त श्रेष्ठ कार्यों के लिए सम्मान पर शॉल तथा एक लाख रुपए का पुरस्कार देने का निर्णय लिया है। यह कार्यक्रम नई दिल्ली में मार्च माह में आयोजित किया जा रहा है। ध्यान रहे डॉ. भवानीलाल भारतीय वर्तमान में श्रीगंगानगर में कई वर्षों से अपनी लेखनी व प्रवचनों से वैदिक विचारधारा तथा हिन्दी साहित्य में लेखों के माध्यम से देशवासियों को लाभान्वित कर रहे हैं।

श्री भवानीलाल का जन्म 15 मई 1928 को परबतसर (जिला नागौर) में हुआ। आपने हिन्दी व संस्कृत में एम.ए. के बाद 'ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की संस्कृत साहित्य को देने' विषय पर पी.एच.डी. की। उनके शोधग्रंथ को 1968 में प्रकाशित किया गया। आपने राजस्थान के कॉलेजों में 1961 से 1980 तक अध्यापन का कार्य किया। पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द वैदिक शोधपीठ में प्रोफेसर तथा अध्यक्ष पद पर कार्य किया। इस अवधि में 28 शोध छात्रों को वेद, मनुस्मृति, उपनिषद् ब्राह्मण, गीता, सूत्र साहित्य तथा दयानन्द जी के विषयों पर शोध प्रस्तुत करने हेतु मार्गदर्शन दिया। अपने शोध कार्य के साथ–साथ आपने अन्य विश्वविद्यालयों में शोध कार्यों में सहयोग दिया।

वैदिक धर्म प्रचारार्थ कार्य: स्वदेश तथा विदेश (नेपाल, हौलेण्ड, मॉरिशस आदि) में वेद और वैदिक संस्कृति तथा आर्य समाज के संदेश के प्रचार हेतु आपने व्याख्यान और प्रवचन देने का कार्य किया। मॉरिशस में विशेष रूप से आर्य पंडितों तथा पुरोहितों को ऋषिकृत सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का प्रशिक्षण वर्ष 2003 के दौरान दिया। आपने मॉरिशस रेडियो तथा टीवी पर नियमित वेद प्रवचन किए तथा हॉलैण्ड के रेडियो स्टेशनों से विशेष पर्वों तथा सांस्कृतिक दिवसों पर व्याख्यान प्रसारित किए। इसके अलावा भी आपने अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद् तथा अन्य शोध संगोष्ठियों विचार गोष्ठियों में भाग लिया। पत्र–पत्रिकाओं में लेखन के अलावा आप विदेशी शोध विद्वानों के सम्पर्क में भी रहे और शोध विषयक परामर्श दिया।

पुरस्कार सम्मान आदि: 6 दशकों में विस्तृत लेखन तथा शोध कार्यों के लिए आर्य समाज मुम्बई, आर्य समाज फुलेरा द्वारा दयानन्द सम्मान एवं आर्य समाज भुवनेश्वर द्वारा दयानन्द शोध सम्मान से आपको सम्मानित किया गया।

दूरभाष: 0291– 2755883

ब्रह्मयज्ञ में आचमन की महत्ता

● **डॉ. सुशील वर्मा**

उपासना, तपस्या तथा योगाभ्यास का मात्र एक ही प्रयोजन है – अपने अन्त:करण में अनगिनत सत्प्रवृतियों का जागरण, सद्भावना का उन्नयन, देवत्व के समावेश का अभ्यास। महर्षि मनु का कथन है कि शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या एवं तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मन: सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।
मनु 5/109

इसलिए अन्त:करण की शुद्धि ही सर्वोत्तम एवं परमेश्वर प्राप्ति का साधन है। पञ्चमहायज्ञों के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती का कथन है – ''इन नित्य कर्मों के फल ये हैं कि ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति और अरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सिद्धि होना। इससे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं।''

ब्रह्मयज्ञ में 'ब्रह्म' शब्द के कारण स्वाध्याय और सन्ध्या दोनों ही गृहीत हैं। स्वामी जी की सन्ध्या पद्धति में सर्वप्रथम आचमन का विधान है। तत्पश्चात् इन्द्रिय स्पर्श व मार्जन कर्म, मनसापरिक्रमा, उपस्थान आदि। स्वामी जी की विद्वत्ता एवं विलक्षणता इस पहले कर्म से ही प्रकट होती है कि उन्होंने आचमन के लिए एक ऐसे मंत्र का विनियोग किया जिसका प्रयोग उनसे पहले किसी ने भी नहीं किया। वह यजुर्वेद का प्रसिद्ध मंत्र है –

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु न: । यजु 36/12

पौराणिक जन इस मंत्र का प्रयोग शनैश्चर पूजा के लिए करते हैं। वहीं तैत्तिरीय आरण्यक में यह उपासना कर्म प्रकरण मे विनियुक्त है। तै. आ. 4/42/4

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में इस मंत्र से जल द्वारा आवोक्षण कर उदीचीन वंश को शरण करना लिखा है। आपस्तंब श्रौत सूत्र 5/4/1 शांखायन में इस मंत्र द्वारा छाती पर जल प्रोक्षण का विनियोग है। 4/27/19

इसी प्रकार हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र में यह ब्रह्मचारी के उपनयन में मार्जन कर्म में विनियुक्त है। ये सभी विनियोग 'आप:' शब्द का अर्थ 'जल' के रूप के कारण किए गए हैं। परन्तु महर्षि दयानन्द ने इस मंत्र का विपियोग 'आचमन' कर्म के लिए किया है। उन्होंने इस 'आप:' शब्द को जल तक ही सीमित नहीं रखा अपितु ईश्वरपरक अर्थ सिद्ध करके मंत्र को एक उत्कृष्ट एवं समृद्ध रूप देकर संध्या को पवित्रता एवं आत्मोन्नति का साधन प्रमाणित किया है। उन्होंने यजुर्वेद भाष्य में ''देव्य आप: सर्वप्रकाशसर्वानन्दप्रद सर्वव्यापक ईश्वर:'' शब्द प्रयोग किए हैं। और अप् शब्द को ईश्वर के ग्रहण करने में प्रमाण स्वरूप अथर्ववेद (10/07/10) का मंत्र उद्धृत किया है। यहाँ परमात्मा का नाम 'अप्' है। वह नाम ब्रह्म का है तथा उसी को स्कम्भ कहते हैं।

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदु:।
असच्च यत्र सच्चान्त: स्कम्भं तं ब्रूहि कतम: स्विदेव स: ।।

इसी प्रकार अन्य प्रमाण यजुर्वेद के 32 वें अध्याय के पहले मंत्र का है जहाँ परमात्मा के अन्य नामों के अतिरिक्त 'आप:' भी है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा: ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आप: स प्रजापति: ।।
यजु 32/1

अर्थात् उस परमात्मा के नाम अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप:, प्रजापति आदि हैं। इसी सन्दर्भ में उक्त 'शन्नो देवी' मंत्र में दो शब्द 'अभिष्टये' एवं 'पीतये' हैं, उनकी अपनी महत्ता है। 'अभीष्ट' अर्थात् सांसारिक सुख 'पीति' अर्थात् परमानन्द। सांसारिक सुख सब का पृथक्–पृथक् है इसलिए वह 'इष्ट' सुख कहलाता है और 'पीति' शब्द परमानन्द जो कि सब का समान है, उसमें अपनी इच्छानुसार होने न होने का प्रश्न ही नहीं है। इस सार्वजनिक सुख में स्वतंत्रता नहीं कि जो मेरी इच्छा है वही कर दूँ इस सुख से किसी की हानि न हो। इस इष्टि सुख में 'अभि' शब्द और जोड़ दिया गया अर्थात् पूर्णतया चारों ओर। इस अभीष्ट सुख का स्रोत कल्याणकारी परमात्मा ही हो सकता है।

आचमन मंत्र में 'अभिष्टये' के अनन्तर शब्द उच्चारण करना है 'पीतये' ऋषि ने इस मंत्र का विनियोग किया ही इसलिए है कि परमानन्द मोक्ष से विरोधाभासी किसी अभीष्ट का विचार ही न लाएँ। ब्रह्ममयज्ञ प्रभु भक्ति, स्वाध्याय, आत्मिक शान्ति और ज्ञान वृद्धि के लिए ही है। ब्रह्मप्राप्ति को परे धकेल कर केवल इष्ट सिद्धियाँ चाहने वाला कभी कल्याण को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए इस मन्त्र में आचमन उसी का सार्थक होगा जो ईश्वर प्राप्ति को सांसारिक इष्टियों की अपेक्षा उच्चतम समझता हो। इस प्रकार ऋषि का यह साक्षात् दर्शन है कि ईश्वर प्राप्ति की जिन्हें इच्छा नहीं उन्हे संध्या आदि कर्म के अनुष्ठान से भी इष्ट कामनाएँ प्राप्त नहीं होतीं। इसलिए संध्या के प्रारम्भ में ही यह आचमन मंत्र रखा ताकि साधक परमानन्द की प्राप्ति के लिए शुभ इच्छाएँ मन में रख, उसकी साधना का संकल्प ले। आचमन करने का एक पहलू और भी है – शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि मनुष्य जो असत्य भाषण करता है उस कारण से वह अपवित्र होता है जल का आचमन करके वह व्रत ग्रहण करता है कि मैं पवित्र बनूँगा।

''पवित्रं वा आप: पवित्रपूतो व्रतमुपायनीत''
(शतपथ ब्रा 1/1/1/1)

और जो मनुष्य सत्य का व्रत ग्रहण कर लेता है वह मनुष्यकोटी से देवकोटी में आ जाता है। **''सत्यं वै देवा: अनृतं मनुष्या:''** (शतपथ ब्रा 1/1/1/4)

जल शब्द है ज + ल**ज :– जायते अस्मात् सकलं विश्वं स ज:।**
ल :– लीयते अस्मिन् सकलं विश्वं स ल:।

इस प्रकार यह जल उस कारूणिक रूप परमात्मा की अनुभूति करवाता है। जिसे पीकर हम आनन्दित होते हैं। सारा शरीर तंरगित हो जाता है और जल पीते हुए उच्चारण करते हैं। 'अभिष्टये' वह भी ''पीतये'' के साथ। तब शतपथ के शब्द सार्थक हो उठते हैं। **''मेध्या वा आप:, मेध्या भूत्वा व्रतमुपयानीति''** (शतपथ 1/1/1/1)

और अन्त में इस मन्त्र द्वारा **''शंयोरभि स्रवन्तु न:''** उस परमात्मा से प्रार्थना कि आप हमारा कल्याण करें और हम अविघ्न हों। हम प्रार्थी हैं कि हम पर सुख की वर्षा हो क्योंकि ''शम्'' का अर्थ है – कल्याण, सुख शान्ति। **''शम् सुखनाम''**
(निरूक्त 11/30, 12/44)

'स्रवन्तु' का अर्थ है बूँद बूँद टपकना। शान्ति ऐसी हो जो बूँद बूँद चोये अर्थात टपके। अन्यथा यदि वह भी बहावपूर्ण है तो शान्ति नहीं रह जाएगी अपितु अशान्ति में परिवर्तित हो जाएगी।

'शं नो भवन्तु' से पवित्रपूतो व्रतमुपयानीति अर्थ लें और

'शं यो: अभिस्रवन्तु– से मेध्यो भूत्वा व्रतमुपयानीति''

यह है स्वामी जा की विनियोग पद्धति मन्त्रार्थानुसार कर्म जिसे महीदास ऐतरेय ''रूप समृद्ध'' नाम देते हैं अर्थात् मूलाधार यज्ञ कर्म और मन्त्रार्थ में एक रूपता।

''एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यत् रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियामाणमृगाभिवदति'' ऐ.ब्रा. 1/1/14

गली मास्टर मूल चन्द, फाजिल्का,
मो. : 09217832632

हमारी विदेश नीति : कायरता की चरम परिणति या पक्षाघात

● हरिकृष्ण निगम

पिछले कुछ दिनों में हमारी वर्तमान सरकार ने विदेश नीति के संवेदनशील क्षेत्रों में जो कायरता अथवा पक्षाघात जैसी स्थिति प्रदर्शित की है वह हास्यास्पद होने के साथ ही आगामी दिनों में नई त्रासदियों को जन्म देने वाली भी सिद्ध हो सकती है।

पाकिस्तान व चीन की भारत विरोधी साझी रणनीति और नेपाल, भूटान व अरुणाचल प्रदेश पर पड़ता चीनी साया तो हम लगातार देखते आ रहे थे, अब श्रीलंका व बर्मा को भी हमने अनायास अपना दुश्मन बना दिया है।

हमारे केन्द्रीय विदेशी मंत्री सलमान खुर्शीद शायद इन आक्रामक पड़ोसी देशों को, एक प्रतिरक्षात्मक मुद्रा में,नतमस्तक होकर मात्र बचाव में जबाब देने के लिए बाध्य दीखते हैं। उनका उन देशों से प्रश्न पूछने का मनोबल तो समाप्त ही हो चुका है। उनके दिग्भ्रमित होने पर अनेक सुरक्षा–विशेषज्ञ तक टिप्पणी कर चुके हैं कि सरकार को लकवा सा मार गया है। सरकार एक सामान्य नागरिक को भी खटकने वाले कुछ प्रश्नों का उत्तर देने में भी असमर्थ है और राजनयिक शिष्टता व औपचारिकता के पीछे देश को फिर अनिश्चितता की ओर धकेलती जा रही है। पाकिस्तान और चीन निरन्तर हमारे नीति–विषयक संशय का लाभ उठाकर हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपमानित भी करते जा रहे हैं।

जब चीन ने घोषणा की कि अरुणाचल प्रदेश क नागरिकों को अलग से 'स्टेपल' किए वीजा दिए जाएँगे हम असहाय की तरह चकित व स्तब्ध थे। हम भी स्वयं उसी समय यह घोषित कर सकते थे कि तिब्बती मूल के चीनियों को हम उसी तरह से अलग कागज पर 'स्टेपल' किए वीजा देंगे। पर हमें उनकी भड़काऊ कार्यवाही के विरुद्ध प्रतिक्रिया दिखाने का रंचमात्र भी दम दिखाना रास नहीं आया।

इसी तरह जब चीन ने दक्षिणी चीन सागर में तेल की खोज के प्रयासों की भागीदारी पर प्रतिरोध जताया, हमने उससे मात्र यह पूछने में कोई साहस नहीं प्रदर्शित किया कि वे पाकिस्तान अधिगृहीत कश्मीर में –(जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विवादित क्षेत्र कहा जाता है)–हजारों की संख्या में क्या कर रह हैं, दक्षिण चीन सागर तो कोई विवादित क्षेत्र नहीं माना गया था।

चीन खुलकर पाकिस्तान को जगजाहिर निर्लज्जता के साथ हथियार देता है, जो उसे ज्ञात है कि वे भारत के विरुद्ध ही प्रयुक्त होने वाले हैं। चीन पाक नियंत्रित कश्मीर में आर्थिक निवेश भी करता है पर जब भारत ने हाल में अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया से द्वि पक्षी वार्तालाप में भाग लिया तब चीन के प्रतिरोध से हम दब्बू की तरह पीछे हट गए।

पाकिस्तान भारत जैसे एक शत्रु देश के शत्रु से खुले आम प्रगाढ़ मित्रता व सहयोग का दावा कर भारत की विश्व के हरमंच पर नाक रगड़ता रहा है। पर वह इस बात से भी आश्वस्त रहता है कि हमारे विदेशी मंत्रालय की जड़ता उसका कुछ नहीं बिगाड सकती है। सारी दुनियां अरसे से जानती है कि भारत तथा दुनियां के अन्य स्थानों पर पाकिस्तानी आई.एस. आई. द्वारा पाले पोसे आतंकवादी सारी मनुष्यता का सर्वनाश करने के लिए ताण्डव कर रहे हैं। पर अमेरिका आँख–मिचोली खेलते हुए, संकीर्ण भूराजनीतिक स्वार्थों के लिए पाकिस्तानी तानाशाही और कट्टर धर्मतंत्र के पीछे दौड़ता रहा है, और हम आँखें बंद कर अमेरिका के पीछे दौड़ रहे हैं। यदि पाकिस्तानी शासकों की नकेल कसनी हो तो उनको वाशिंगटन से होने वाली शस्त्रों की आपूर्ति रोकना आवश्यक है। यह काम जटिल है पर यदि भारत यह नहीं सोच सकता है तो वह स्वयं विनाश की राह पर अग्रसर होगा। सारी दुनिया के रणनीति विशेषज्ञ दर्जनों बार दोहरा चुके हैं कि मुल्लाओं, सेना के जनरलों, आई. एस. आई और आतंकवादी संगठनों की चौकड़ी भारत के लिए स्थायी खतरा है। उसने सारे भारत को ही बंधक बना रखा है। यदि हमारे यहाँ आतंकवादी हमले आगे भी होते रहेंगे तो हमारी गीदड़भभकी के बावजूद उनकी प्रकृति प्रख रही होगी। वैश्वीकरण व त्वरित संचार के युग में आतंकवादी व अपराधी–गिरोह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काम करते हैं– यह हमें समझना चाहिए।

मालद्वीप के हाल के चुनावों व श्रीलंका के प्रति राष्ट्रसंघ (यू.एन.एच. आर.सी) के प्रस्तावों के प्रति हमारी ढुलमुख विदेशी नीति ने हमारे अनेक नए दुश्मन पैदा कर दिए हैं। भारत जैसे एक बड़े देश को अपने दक्षिण के प्रवेश द्वार पर स्थित श्रीलंका जैसे महत्त्वपूर्ण देश से दुश्मनी भारत के शत्रुओं को आगामीदिनों में एक नया जमघट बनाने मे मदद देगी। तामिल भाषियों की एकजुटता क्षेत्रीय राजनीति में बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकती है पर देश के दूरगामी हितों की अन्दरूनी सन्तुलन की राजनीति के नाम पर बलि नहीं चढ़ाई जा सकती है।

इन सबका मूलकारण है कि हमारे देश की विदेश नीति एक अग्निशामक दल की तरह सिर्फ आग बुझाने का कार्य कर रही है। 'एड हॉक' निर्णयों के कारण हम अपने रणनीतिक हितों को परिभाषित करने में भी असमर्थ रहे हैं। हम चीन, पाक व अफगानिस्तान व वर्मा की अस्थिरता की प्रकृति ही आज पूरी तरह से पहचान नहीं पा रहे है। हमें आतंकवादियों के परस्पर सहयोग की भी असली समझ नहीं है–कभी इस्लामी अतिरेकी, कभी नक्सलवादी और कभी उत्तर पूर्व के पृथकतावादी आन्दोलनों के गलियारे सभी एक दूसरे से मिलकर काम करते हैं। भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों में अन्दर और बाहर दोहरी चुनौतियाँ है जो हिंसा के नए दौर से देश को घेर सकती हैं। सारा परिदृश्य चुनौती भरा और विस्फोटक है।

ए–1002 पंचशील हाईट्स, महावीर नगर
कान्दिवली (प)–67

☞ पृष्ठ 4 का शेष

तत्त्व-ज्ञान

आँखों में तू है जिसके, दिल में खयाल तेरा।
मुश्किल नहीं है उसको, होना विसाल तेरा।।
दिल का मेरे शिवाला, सब मन्दिरों से आला।
देखा करूँ मैं इसमें, हरदम जमाल तेरा।।
लीला तेरी न जानी, नारद–से देवता ने।
'आनन्द' चीज क्या है, जाने जो हाल तेरा।।

जब अपनी अल्पज्ञता और प्रभु की सर्वज्ञता समझ ली, तब भगवान् अपने शरणागत की टेर सुनता है। साधक की भक्त अमीचन्द जी के शब्दों में मस्त होकर गाता है:

जो हरि गीत प्रीति सँग गाये,
तिसके शोक निकट नहीं आये।
अमृतवत् तेरो चरित मनोहर,
मन की तपन बुझाये।।
उधरे पतित अधम अति पापी,
जो तव शरण में आये।
हे प्रभु, हम अति दुखिया होकर,
तव शरणागत आये।।
परम सुख–दाता ज्ञान–प्रदाता,
तैं वह नाम धराये।
माँग रहे द्वारे पर याचक,
अब क्यों देर लगाये?
विषयन से उपराम रहूँ सदा,
भक्ति हृदय में भाये।
पढ सुन वेद वेदाङ्ग अमीचन्द,
संशय भरम मिटाये।।

सचमुच तब सारे भ्रम मिट जाते हैं, हृदय में प्रभु–प्रेम उमड़ पड़ता है और प्रभु की कृपा–दृष्टि पड़ते ही साधक कृत–कृत्य हो जाता है। भक्त जब किसी दुखिया को चिन्ता ग्रस्त देखता है तो उसे सन्मार्ग दिखलाने के लिए श्री रणवीर जी के शब्दों में पुकार उठता है:

1. भरोसा कर तू ईश्वर पर,तुझे धोखा नहीं होगा।
ये जीवन बीत जायेगा, तुझे रोना नहीं होगा।।
2. कहीं सुख है कहीं दुख है, ये जीवन धूप–छाया है।
हँसी में ही बिता डालो, बितानी ही ये माया है।
3. जो सुख आये तो हँस देना, जो दुख आये तो सह लेना।
न कहना कुछ कभी जग से, प्रभू ही से तू कह लेना।।
4. ये कुछ भी तो नहीं जग में, तेरे बस कर्म की माया।
तू खुद ही धूप में बैठा, लखे निज–रूप की छाया।।
5. कहाँ ये था? कहाँ तू था? कभी तो सोच ओ बन्दे!
झुकाकर सीस को कह दे, प्रभो वन्दे! प्रभो वन्दे !!

भक्त के चिह्न

परमात्मा के अनन्य भक्तों में फिर कुछ विशेषताएँ आ जाती हैं और देखा जाता है कि उनकी जीवन–यात्रा का ढंग कुछ विलक्षण हो गया है।

प्रभु–भक्त–निर्लोभी होता है।
प्रभु–भक्त–निर्भय होता है।
प्रभु–भक्त–निरभिमानी होता है।
प्रभु–भक्त–निरहङ्काकारी होता है।
प्रभु–भक्त–निर्मोही होता है।
प्रभु–भक्त–अदम्भी होता है।
प्रभु–भक्त–अक्रोधी होता है।
प्रभु–भक्त–अकामी होता है।
प्रभु–भक्त–परम प्रेमी होता है।
प्रभु–भक्त–हर हाल में खुशहाल होता है।
प्रभु–भक्त–सदा परोपकार में लगा रहता है।
प्रभु–भक्त–दया से भरपूर रहता है।

इसी प्रकार प्रभु–भक्त शान्त रहता है; भोग की चोट पड़ने पर घबराता नहीं; मन, वाणी और कर्म से किसी का अहित नहीं करता; समस्त जगत् को प्रभु का खेल समझकर उसी की महिमा देखता है और संसारी धन्धों ही में फँसे लोगों को सचेत करता हुआ कहता है:

बहुत गई थोड़ी है बाकी,
अब तो अलख जगा बाबा!
थोड़े दिन का खेल–तमाशा,
क्यों आसक्त बना बाबा?

जितने प्रकार की भक्ति का वर्णन यहाँ किया गया है, उनका तात्पर्य यही है कि प्रभु–कृपा प्राप्त हो सके। इनकी साधना करने वाले साधक भक्त धन्य हैं:

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था,
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवितसुखसागरेऽस्मिन्,
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

'जिसका चित्त अपार विज्ञानानन्द–घन समुद्ररूप परब्रह्म परमात्मा में लीन हो गया है, उससे कुल पवित्र, माता कृतार्थ और पृथिवी पण्यवती हो जाती है।'

पितरों का श्राद्ध

● डॉ. रघुवीर वेदालंकार

आश्विन मास में पितरों का श्राद्ध किया जाता है। व्याकरण के अनुसार एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन में क्रमशः तीन रूप बनते हैं–पिता, पितरौ, पितरः। पिता=जनक। माता च पिता च=पितरौ। अर्थात् माता तथा पिता दोनों का वाचक पितरौ शब्द है। इसके पश्चात् पितृ कोटि के अन्य व्यक्ति भी हों तो उन्हें पितर कहा जाता है। पिता तथा पितरौ ये दोनों शब्द जीवित माता–पिता के लिए ही प्रयोग किये जाते हैं तो इनके बहुवचन पितरः का सम्बन्ध मृत व्यक्ति से कैसे लगाया जा सकता है? अतः पितर भी जीवित होते हैं। मृतकों के साथ स्वर्गीय आदि विशेषण लगाने पड़ेंगे। अन्य हेतु वेद में कहा गया है–**पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति** (यजु.25/22) अर्थात् सभी पुत्र पितर बन जाते हैं। यदि मृत को ही पितर कहते हैं तो इसका अर्थ यही होगा कि सभी पुत्र मर कर पितर कोटि में आ जाएं। ऐसी कामना कौन करेगा? इसका यह अर्थ है कि पुत्रगण भी अपने सन्तानों को उत्पन्न करके पितर कोटि में पहुंच जाएं। इस प्रकार वे व्यक्ति जो अपना गृहस्थाश्रम पूर्ण कर चुके हैं, वे अभी तक अपने माता–पिता के लिए पुत्र ही थे, किन्तु अब अपनी सन्तानों को जन्म देकर स्वयं पिता–पितरौ–पितरः बन गये हैं। यही कामना एक पिता अपनी सन्तान से करेगा। इन पितरों का पिता नवजात शिशु का पितामह कहलायेगा तथा पितामह का पिता प्रपितामह कहलायेगा। इस प्रकार पुत्र–पितर–पितामह–प्रपितामह इन चार पीढ़ियों का उल्लेख निम्न मंत्र में इस प्रकार किया गया है–

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा।। (यजु. 19/37)

इसका सायणाचार्य का अर्थ इस प्रकार है–

मुझ यजमान को सोम के सम्पादक मेरे पितर, पितामह तथा प्रपितामह शतायु करने वाले शुद्धि साधन के द्वारा पवित्र करें। माध्यन्दिन संहिता में यह भाग भी है– **विश्वमायुर्व्यश्नवै**। अर्थात् जिसके द्वारा मैं सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करूं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने वाला युवक अपने पितरों=माता–पिता, ताऊ–चाचा आदि, पितामह तथा प्रपितामह से अपनी आयु की प्रार्थना कर रहा है। इस प्रकार पितर जीवित अवस्था का ही वाचक है, मृत का नहीं।

यद्यपि माता–पिता, ताऊ–चाचा आदि को ही पितर कहा जाता है, किन्तु पितामह तथा प्रपितामह को भी पितर कहकर यजुर्वेद[1] 19/49 में पितरों की तीन कोटियां दी गयी हैं:

[1] **उदीरतामवरऽउत्परासऽ उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।**
असुं यऽइयुरवृकाऽ ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।

(1) **अवर पितर** = माता–पिता आदि। (2) **मध्यम पितर**–पितामह आदि। (3) **परासः** = प्रपितामह आदि। ये सभी जीवित अवस्था में पितर पद वाच्य हैं। मंत्र में इनके लिए स्पष्ट रूप में **'असुं ये ईयुः'** कहा गया है। अर्थात् जो प्राणों को धारण कर रहे हैं। मंत्र में युवा पुत्र यजमान के रूप में प्रार्थना कर रहा है कि **सोम्यासः** = शान्ति आदि गुणों से सम्पन्न, ऋतज्ञाः =सत्य के जानने वाले पितर यज्ञ में बुलाये जाने पर हमारी रक्षा करें। इस प्रकार पितर पद जीवित का ही वाचक है।

यजुर्वेद में पितरों के जो विशेषण विभिन्न मंत्रों में दिये गए हैं– उनके अनुसार भी पितर शब्द जीवित व्यक्तियों का ही वाचक है। यजु. 19/62 में कहा गया है कि हे पितरो! आप लोग हमारे दायी ओर अपने घुटनों को मोड़कर अर्थात् पालथी लगाकर हमारे इस यज्ञ में बैठिए तथा मानव स्वभाववश हमने यदि कोई आपका अपराध कर दिया है तो उसके लिए हमें दण्ड मत दीजिए–

आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे।

इतना ही नहीं, अपितु इस यज्ञ में अन्नादि से तृप्त होकर आप हमें उपदेश भी दीजिए–

अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तुन्त्वस्मान्

यजु. 19/58

अग्निष्वात्ता पितरः एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः।।
ऋत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन।

यजु. 19/59

हे यज्ञविद्या में निष्णात पितरो! आप लोग हमारी प्रत्येक सभा= सदः सदः (सायण) में आकर यज्ञ में शुद्ध किये गये अन्नों का उपयोग करके हमें सर्ववीर=पशु–पुत्र आदि से युक्त (सायण) ऐश्वर्य को प्रदान कीजिए।

अक्षन्पितरोऽमीमदन्तः पितरोऽतीतृपयन्तः पितरः।
पितरः शुन्धध्वम्। यजु. 19/36

इसमें कहा गया है कि पितरो ने हमारे अन्न का भक्षण कर लिया है तथा वे प्रसन्न हो गये हैं तथा हमें भी प्रसन्न कर दिया है। हे पितरो! आप हमें शुद्ध कीजिए।

इस प्रकार इन मंत्रों को देखने से सुस्पष्ट हो जाता है कि जीवित माता–पिता आदि का नाम ही पितर है, मृत का नहीं। घर का कामकाज संभालने के बाद युवा गृहस्थ को घर पर समय–समय पर यज्ञ–सत्संग आदि का आयोजन करके अपने उन पितरों को बुलाते रहना चाहिए जो इस समय गृहस्थ के दायित्वों से मुक्त होकर वानप्रस्थ रूप से रह रहे हैं। ये लोग वहां जाकर अपने पुत्रादिकों को अपने सदुपदेश के द्वारा गृहस्थ जीवन की शिक्षा देते रहें तथा बदले में पुत्रादि उनका श्रद्धापूर्वक अन्न–धन आदि से सत्कार करते रहें। यही श्राद्ध कहलाता है। पितरों को जो भी दिया जाये, वह श्रद्धापूर्वक ही देना चाहिए।

जीवित व्यक्ति ही यज्ञ में आ सकता है। वही यज्ञ में बैठकर यजमान पुत्र को सदुपदेश दे सकता है। वही भोजन करके तृप्त हो सकता है। मृत व्यक्ति इन कार्यों को नहीं कर सकता। यहां पर यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि कि यज्ञ में पितरों को यजमान के दायीं ओर पालथी मार कर बैठने को कहा गया है। यजमान पूर्वाभिमुख बैठता है अतः उसके दायीं ओर दक्षिण दिशा ही होती है। उसी दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख ब्रह्मा बैठता है। पितरों को भी वहीं पर बैठने की प्रार्थना की गयी है। पितरों का यज्ञ से विशेष सम्बन्ध है। आजकल प्रचलित श्राद्ध कार्य में यज्ञ का प्राधान्य न होकर ब्राह्मणों के भोजन तथा पक्षियों को श्राद्ध का अन्न देने की प्रथा है। यह प्रथा सर्वथा अवैदिक है। इस प्रथा पर निम्न प्रश्न उपस्थित होते हैं–

(1) यदि श्राद्ध का अन्न ब्राह्मणों को खिलाने से पितरों को पहुंच जाता है तो ब्राह्मण श्राद्ध में मांस–मदिरा का सेवन इनके व्यसनी पितरों के लिए क्यों नहीं करते?

(2) पितर कहां से आते हैं। पुनः कहां चले जाते हैं? क्या किसी स्थान विशेष पर इकट्ठे रहते हैं।

(3) कहते हैं कि पितर सूक्ष्म शरीर के द्वारा श्राद्ध के अन्न को खाने आते हैं। अन्न आदि का खाना स्थूल शरीर का ही कार्य है, सूक्ष्म का नहीं।

(4) यदि पितर पक्षी रूप में आते हैं तो क्या उनका यह पक्षी रूप केवल श्राद्ध में ही उपस्थित होता है या सर्वदा बना रहता है? यदि सर्वदा बना रहता है तो क्या सभी पितर मर कर पक्षी ही बनते हैं, मनुष्य कोई भी नहीं बनता? एक घर का अन्न खाने के लिए अनेक पक्षी आ जाते हैं तो उनमें पितर कौन सा होता है तथा दूसरे पक्षी वहां किसलिए आ जाते हैं वे भी तो किसी के पितर होंगे, वहां क्यों नहीं जाते? वेदों में पितरों को पक्षी रूप में कहीं भी नहीं लिखा।

(5) जो अति दुष्कर्मा, नीच, पापी जन हैं, क्या वे भी मरकर पक्षी ही बनते हैं। यदि ऐसा है तो नारकीय नीच योनियों में कौन जायेगा?

अतः यह सब कल्पना निराधार एवं वेद विरुद्ध होने से त्याज्य है। यह निरा पाखण्ड एवं मूर्खता है।

यजुर्वेद के कुछ मंत्रों के द्वारा पितरों का श्राद्ध सिद्ध किया जाता है। उनमें से एक मंत्र इस प्रकार है–

ये ऽअग्निष्वात्ता ये ऽअनग्निष्वात्ता मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयति।। यजु 19/60

इसका यह अर्थ किया जाता है–

जिन पितरों को जला दिया जाता है तथा जिन्हें नहीं जलाया जाता है वे द्युलोक में अन्न के द्वारा आनन्दित हो रहे हैं। उनके लिए परमेश्वर इच्छानुसार शरीरों को बना देता है। सायणाचार्य ने यहां पर 'स्वधया मादयन्ते का अर्थ स्वकर्मफलोपभोगेन तृप्यन्ति किया है। अर्थात् वे पितर लोग अपने कर्मों के फलों का उपभोग द्युलोक में करते हुए प्रसन्न होते हैं। यदि यह मान लिया जाए तो प्रश्न है कि यदि पिता वहां पर प्रसन्न हैं ही तो वर्ष में एक दिन उन्हें यहां आने की क्या आवश्यकता है? (2) स्वधा का अर्थ कर्मफल का उपभोग नहीं है, अपितु निघण्टु 1/12 में स्वधा उदक नामों में तथा 2/7 में अन्य नामों में पठित है। (3) शास्त्रीय सिद्धान्त यही है कि व्यक्ति इसी लोक में नाना योनियों में आकर अपने पूर्वजन्म के तथा इस जन्म के शुभाशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप सुख तथा दुःख को प्राप्त करता है। यदि पृथिवी से अन्यत्र ऐसा कहीं होता है तो इस लोक में विविध योनियों में पैदा होना तथा जन्म से ही नाना सुख–दुःखों की प्राप्ति किस आधार पर होती है। सिद्धान्त यही है कि इस लोक से अन्यत्र कहीं भी स्वर्ग तथा नरक लोक नहीं है, जहां देवता रहते हैं तथा नरक में यमराज का शासन है। इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है–

जिन पितरों ने अग्नि विद्या को भली प्रकार ग्रहण कर लिया है तथा जिन्होंने अग्नि से भिन्न अन्य विद्याओं को जान लिया है वे दिवः मध्ये=यश के साथ अन्नादि से तृप्त होते हैं। अर्थात यशस्वी होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में यश को ही द्युलोक कहा गया है– द्यौर्यशः (12/3/4/7), द्यौरेवयशः (गो.पू. 5/15)

ऐसे लोगों के शरीरों को परमेश्वर उनकी इच्छानुसार कर्म करने में समर्थ बना देता है।

इस प्रकार के मन्त्र यजुर्वेद में पर्याप्त हैं। कुछ मन्त्र अथर्ववेद में भी हैं किन्तु इनसे कहीं भी यह सिद्ध नहीं होता कि मृत व्यक्ति का नाम पितर है। मृत व्यक्ति इन सभी कार्यों को नहीं कर सकता जिनका वर्णन इन मंत्रों में है। यथा–यज्ञ में आना, भोजन करना, प्रसन्न होना तथा यजमान को उपदेश देना। यज्ञ में घुटने मोड़ कर बैठना। ये सभी कार्य जीवित व्यक्तियों के ही हैं। यजुर्वेद में पितरों के निम्न प्रकार बतलाये गये हैं– (1) सोमयाः =सोम का पान करने वाले, (2) सोमसदाः=सौम्य गुण युक्त, (3) बर्हिषदः= यज्ञ में बैठने वाले, (4) अग्निष्वान्ताः = अग्नि विद्या

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

हमारी यह गो भक्ति कैसी

जगह–जगह गौ वंश से लदे ट्रक पकड़े जाते हैं। उनमें गोवंश बुरी तरह ठूँस कर भरा होता है, जिससे उनके रंभाने की आवाज़ बाहर नहीं आए। निकालने पर कुछ मरे मिलती हैं। कभी–कभी बजरंग दल द्वारा पकड़े जाते हैं तो कभी पलटने पर मालूम पड़ते हैं।

व्यापारी वर्ग उन्हें बुरी तरह तड़पाकर मार रहा है, ऐसी गो भक्ति को देखकर दिल दुखता है व सोचने को मजबूर करता है।

जगदीश प्रसाद माहेश्वरी
E–3/789 शहीद नगर
आगरा 282001

****

मकसद है कि लोग, ठीक रास्ता पकड़ सकें

निवेदन है कि मैं 'आर्य जगत्' का आजीवन सदस्य हूं। मेरा क्रम नं. 007797 है। इस पत्रिका के सभी लेख बहुत बढ़िया ढंग से लिखे होते हैं। सभी लेखक महानुभावों को बहुत–2 नमस्कार हो।

दिनांक 19/1/2014 से 25/1/2014 का अंक पढ़ा। पृष्ठ 10 पर श्रीमान् देवराज आर्य मित्र नई दिल्ली जी का लेख शव को दुर्गति से बचाओ पढ़ा। इसमें विद्वान लेखक ने जो कुरीतियां समाज में प्रचलित हैं उसका वर्णन किया है। सभी लोग इसे महसूस करते हैं, परन्तु इसका खात्मा करने के लिए कोई–कोई इंसान आगे आता है। मैं इस 10 न. पेज की फोटो कॉपी करवाकर सज्जनों में बांटता रहा हूं ताकि समाज प्रगति कर सके एवं गलत परंपरा बन्द हो सके। हमारे लोकल विद्वानों ने भी ऐसा सुझाव कई अवसरों पर दिया है।

मेरा ऐसा लिखने के पीछे एक कारण भी है। मेरे सारे परिवार के सदस्य भाईगण चाचा दादा के परिवार के सदस्य सभी पौराणिक मान्ताओं में विश्वास रखते हैं। घर में मैं ही अकेला हूं जो आर्य समाजी विचार धारा का हूं। मेरा उनसे अक्सर कई बातों पर मतभेद होता रहता है, सिर्फ विचारों का फर्क है, वैसे हम सभी एक ही हैं।

मेरा ऐसा लिखने का मकसद है कि लोग, ठीक रास्ता पकड़ सकें। पाखण्ड से बच सके।

दिसम्बर 2013 में मेरी माता जी बीमार हो गई। एवम् 11/1/2014 को उनका देहान्त हो गया। मैंने सभी कार्य आर्य समाज के पद्धति से करवाने की इच्छा जताई लेकिन कोई नहीं माना। मैं इस हेतु हरिद्वार कनखल पिहोवा में नहीं जाना चाहता था। वहां पर काफी लूट खसूट होती है। मैंने विद्वानों से सुना था कि शरीर भस्म हो जाने के बाद हड्डियों को दफना देना चाहिए और राख इत्यादि को खेतों में विखेर देना चाहिए। छोटा भाई हरिद्वार, कनखल पहोवा गया। वहां पर पैसा लुटा कर घर वापस आया तो कहने लगा 'आर्य समाज इस बाबत जो कहता है वह ठीक है वहां पर तो पण्डे कपड़े उतारने को भी लालायित रहते हैं।' 13वीं वाले दिन रस्म पगड़ी का आयोजन हुआ वहां पर गरुड़ पुराण का आश्रय लेकर पंडित महोदय ने काफी कुछ लूट मार की।

मैं जी सोचता हूँ हम लोग कब तक ऐसे शोषण के शिकार होते रहेंगे। यह व्यवस्था कब बदलेगी। क्या कभी आर्यों का शासन फिर आयेगा। गलत परम्पराओं से हमें कब मुक्ति मिलेगी। सभी को पता है कि शव के उपर डाली गई चादरें फिर मार्केट में आ जाती है, परन्तु फिर भी पाखण्ड जारी है।

कभी–कभी महसूस करता हूँ कि 'आर्य जगत्' इतनी कम कीमत पर (मूल्य 2 रु०) हमें काफी समय से प्राप्त हो रहा है। आप सभी विद्वान जन समाज की भलाई कर रहे हो। सभी दानी पुरुष हो। ईश्वर करे हमारा आर्य समाज दिन दुगनी रात चोगुनी उन्नति करता रहे। देश विदेश में जहां पर भी आर्य सज्जन हैं खुशहाल रहें।

सुभाष चन्द
घर न. 948, शीश महल चौक,
होशियारपुर शहर – 146001

****

मन्त्र गीत

ज्योति पूर्ति

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमा भासि रोचनम्।। ऋ.01.50.4।।

रह भले दिवाकर दूर दूर,
प्रभु ज्योति कृपा कर पूर–पूर।

जग झंझट झंझावातों से,
दुर्व्यसन द्वेष आघातों से ।
यह तन की तरणी तार प्रभो,
कृमि रोग भोग उत्पातों से।

यह देह बनाकर शूर शूर,
प्रभु ज्योति कृपा कर पूर–पूर।

तुम दुःख दूषण सब हरते हो,
सुख संसृति पूषण करते हो।
यह हृदय भव्य भासित कर दो,
संगमन सुभूषण भरते हो।

उर अहम् करा कर चूर–चूर,
प्रभु ज्योति कृपा कर पूर–पूर।।2 ।।

प्रभा समन्वय लाओ दिनकर,
सद्बुद्धि सन्तुलित कर उठकर।
परिवेश देश माधुर्य वेश,
शौन्दर्य श्रेय श्रम सज्जित कर।

यश विश्व गुँजाकर तूर तूर,
प्रभु ज्योति कृपा कर पूर पूर ।।3 ।।

'देवातिथि' देवनारायण भारद्वाज
'वरेण्यम्' अवन्तिका (I) रामघाट मार्ग
अलीगढ़, 202001(उ.प्र.)

शर्मनाक है आर्य कन्या पाठशाला का बन्द होना

आपके पत्र के माध्यम से प्रदेश में समस्त आर्य जनों से आग्रह है कि अमरोहा (उ.प्र.) में विगत दस वर्षों से दयानन्द आर्य कन्या विद्यालय बन्द है क्योंकि अमरोहा में आर्य भक्तजनों में आपसी विवाद अत्यन्त गहरा है। नगर कार्यकारिणी में गम्भीर मतभेद हैं। दस वर्ष पूर्व इस विद्यालय में चार सौ से ज्यादा छात्रायें शिक्षा ग्रहण करती थीं तथा उनके शिक्षण कार्य हेतु समस्त सुविधाएँ उपलब्ध थीं।

विश्वास है कि उ.प्र. के प्रबुद्ध आर्य जन इस समस्या का समाधान करेंगे और विद्यालय को पुनः सक्रिय करेंगे।

आर्य कन्या पाठशाला का बन्द होना आर्य भक्तों के लिए शर्मनाक है।

कृष्ण मोहन गोयल
113–बाजार कोट
अमरोहा (उ.प्र.)244221

****

☞ पृष्ठ 6 का शेष

होलिका दहन क्यों?...

की हत्या कर दी गई। इसी प्रकार हनुमान की माता अंजना व पिता पवन बिना पूँछ के थे वीर हनुमान की सर्वत्र पूछ को पूँछ बताकर 'बन्दर' बना दिया। जो पृथ्वी से 13 लाख गुणा बड़ा सूर्य मुख में निगल गया। इसी प्रकार चार वेद छः शास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण महाबली रावण को 'दशानन' की उपाधि से सुशोभित किया गया था। लेकिन यहाँ भी धूर्तों ने दशानन का अर्थ दशमुख वाला कर दिया। इसी प्रकार होली शब्द का प्रयोग 'होलक' शब्द को बिगाड़ कर किया गया है। इसके साथ–साथ 'होलिका' हिंदू पंचांग के अनुसार वर्ष का अंतिम पर्व है, तो इसका हिंदू संवत् में वर्ष का अंतिम पर्व होना और इसे समाज में परंपरानुसार होली कहना इसके एक अन्य गूढ़ अर्थ और कारण की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। इस पर्व पर जो यज्ञ किया जाता था उसमें हमारे पूर्वज लोग, विशेषतः हमारे ऋषिगण हमसे अपने पूरे वर्ष के गलत कार्यों का प्रायश्चित्त भी कराया करते थे। जिसके अनुसार उन गलत कार्यों की नववर्ष में पुनरावृत्ति न हो इस भाव से यज्ञ में आहुति दी जाती थी। गलती अब तक जो होनी थी सो होली अब भविष्य में ऐसा नहीं होगा, यह भावना गुप्त रूप से कार्य करती थी। इसलिए भी इस पर्व को होली कहा जाने लगा। लोकाचार में प्रचलित भी है कि जो 'होली से होली' अर्थात जो कुछ भी वर्ष भर में आपस में मनमुटाव अथवा वैरभाव था। उसे दिल से निकालकर परस्पर प्रेम की भावना जागृत करें। सदाचार, समरसता आदि मानवीय भाव हमारे जीवन का आभूषण हों जिस प्रकार पेड़–पौधों की नवीन कोमल पत्तियाँ अपने साथ–ही–साथ फल की प्रतीक बौर को लाकर उन्हें सभी प्राणियों के लिए उपयोगी एवं फलदायी बना डालती हैं उसी प्रकार हमारा जीवन भी पूरे समाज के लिए उपयोगी व फलदायी हो। प्रकृति का कैसा नियम है कि पुराने पत्तों को छोड़कर पतझड के पश्चात पेड़–पौधों पर जब नवीन पत्तियाँ आती हैं तो अपने साथ फल की बौर भी लाती है। मानो ये कह रहीं हों कि पुरानी बात समाप्त हुई अब नया संदेश रचेंगे। ''छोड़ो कल की बातें, कल की बात पुरानी, नए दौर में लिखेंगे, मिलकर नई कहानी''। मानव भी इसी भावना से अपनी जीवन शैली का विकास करे, तो यह वसुन्धरा स्वर्ग समान हो जाए। यही संदेश हमारा पावन पर्व होली हमें देता है। इसलिए भी होलक शब्द हटाकर होली का प्रयोग किया गया एवं अधजले अन्न को 'होलक' कहते हैं कारण इस पर्व का नाम होलिकोत्सव है। भारतीय ऋषि आविष्कृत वैदिक पर्व प्रणाली में होलिकोत्सव फाल्गुन मास में जिस समय आता है। उस समय सारी प्रकृति में परिवर्तन की प्रतीति अनुभव होती है। पेड़–पौधे नई–नई पत्तियों से भलीभाँति लद गए होते हैं, आम आदि के पौधों पर बौर आ रहा होता है। फसल को देखकर किसान का अंतर्मन भी लहलहाने लगता है। पशु–पक्षी तक अपना रंग बदलने लगते हैं। पुराने पंख छोड़कर उसी प्रकार नए रंग के पंखों में रंग जाते हैं। जिस प्रकार पेड़ पौधे पुराने पत्तों का परित्याग कर पुनः नए पत्तों को ग्रहण कर अपना शृंगार करके दुल्हन की भाँति सजग खड़े हो जाते हैं। गाय आदि पशु भी अपने रोम डालते हैं। नए रोम आकर उन्हें भी नया शृंगार पहना डालते हैं कि प्रकृति में चहुँ ओर परिवर्तन की लहर दौड़ी सी अनुभव होती है। प्रकृति अपना रूप परिवर्तित कर पुनः सजधजकर नव वधू सी लगने लगती है। इसी समय किसान अपने खेत पर षाढी की फसल–गेहूँ, जौ चना व मटर आदि की अधपकी फसल को भूनकर खाता हुआ बहुत ही मस्ती का अनुभव करता है। इस अधपके अन्न को भूनकर खाने को वह 'होला' कहता है। इस वैज्ञानिक सत्य को पौराणिक पंडित किसी कथानक से नहीं जोड़ पाए। उन्हें वह होला ही क्यों कहता है? होलिका का भाई कहीं होलक अथवा होला तो नहीं था?

नहीं, ऐसा नहीं है। अपितु संस्कृत में अधपके अन्न को होलक कहते हैं– **तृणाग्निं भ्रष्टार्द्धपक्व शमीधान्यं होलकः। होला इति हिंदी भाषा। (शब्द कल्पद्रुम कोष)** अर्थात् तिनकों की अग्नि में भूने हुए अधपके शमीधान्य फली वाले अन्न को 'होलक' कहते हैं जिसे हिंदी में होला कहते है। 'भाव प्रकाश' ग्रन्थ के अनुसारः– **अर्द्धपक्वशमी धान्ये स्तृणा भ्रष्टैश्च होलकः होलकोऽल्पानिलो मेदकाल दोषश्रमा यः भवेदभो होलका यस्य तत्तद्गुणो भवेत्।** अर्थात् तिनकों कर अग्नि में भुन हुए (अधपके) शमी–धान्य (फली वाले अन्न) को होलक कहते हैं यह होला स्वल्प वात है। यह मद, कफ और थकान के दोषों को शमन करता है अर्थात् उन्हें समाप्त करता है। जिस–जिस अन्न का होला होता है उसमें उसी–उसी अन्न का गुण होता है। वसन्त ऋतु में नए अन्न से (इष्टि) यज्ञ करते हैं इसीलिए इस पर्व का नाम वासन्ती नवसस्येष्टि है। 'होलक' का यह स्वास्थ्यवर्धक व सुहावना मौसम ही होलिका का जनक है। आप प्रतिवर्ष होली जलाते हैं, उसमें 'आखत' डालते हैं, जो आखत है वो 'अक्षत' का अपभ्रंश रूप है, अक्षत चावल को कहते हैं। अवधी भाषा में आखत (अक्षत) आहुति को कहते हैं। आहुति चाहे चावल की हो अथवा गेहूँ व जौ की बाल की हो यह सब यज्ञ की ही प्रक्रिया है क्योंकि यज्ञ में स्विष्टकृत् आहुति चावल अथवा गेहूँ के बने अन्न से दी जाती है। इसी प्रकार जो आप जल के द्वारा होली की परिक्रमा करते हैं वह क्रिया भी यज्ञ में जल प्रसेचन की प्रक्रिया है। जो यज्ञमान के द्वारा सम्पन्न की जाती है। पूर्वकाल में भारतवर्ष में नव सस्येष्टि यज्ञ सामूहिक रूप से किए जाते थे यह यज्ञ शरद ऋतु की पूर्णिमा और अमावस्या व ग्रीष्म ऋतु की पूर्णिमा को किए जाते थे। चारों वर्ण (बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) परस्पर मिलकर इस होली रूपी विशाल यज्ञ को सम्पन्न करते थे। वैसे तो भारत में प्रत्येक कार्य करने से पूर्व हवन किया जाता है, किन्तु **विशेषरूप से ऋतु' परिवर्तन (ऋतु–सन्धि) के समय बृहद् यज्ञों का प्राचीनकाल से ही प्रचलन रहा है। इसका कारण यह है कि ऋतु–सन्धि अनेक रोग उत्पन्न करती है। इन व्याधियों का निवारण भैषज्य (औषध) यज्ञों का प्राचीनकाल से ही प्रचलन रहा है।** शतपथब्राह्मण में इसकी पुष्टि की गई है– भैषज्ययज्ञा व एते। **ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।।** ''ये भैषज्य यज्ञ कहलाते हैं। ऋतुओं की सन्धि में व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, इसलिए इनका प्रयोग ऋतु–सन्धि में होता है।'' भारतीय घरों में नया अन्न अग्नि में अर्पित किए बिना प्रयोग में नहीं लाया जाता था। प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के पदार्थों द्वारा यज्ञ करने की प्रथा रही है। सम्भवतः विशेष मौसम में उत्पन्न होने वाले पृदार्थ उस समय के रोगों को दूर करने में अधिक उपयोगी होंगे इसलिए उनके निवारण के लिए यह यज्ञ किए जाते थे, यह होली हेमन्त और बसन्त ऋतु का योग है रोग निवारण के लिए यज्ञ ही सर्वोत्तम साधन है।

प्रिय सज्जनो ! अब आप होली के वास्तिविक स्वरूप व सत्य सनातन वैदिक परम्परा के अनुसार होली नए अन्न का प्रतीक है यह समझ ही गए होंगे। अतः परमात्मा के द्वारा प्रदत्त बुद्धि का प्रयोग करें व सत्य–असत्य का निर्णय करके हिन्दुओं की अपनी प्राचीन वैदिक परम्परा के अनुसार बृहद् सामूहिक यज्ञों द्वारा होलिकोत्सव को सार्थक करें।

चरित्र निर्माण मण्डल, सैनी मोहल्ला
ग्राम शाहबाद मोहम्मदपुर, नई दिल्ली–61

☞ पृष्ठ 9 का शेष

पितरों का श्राद्ध

से युक्त। यह वही अग्नि विद्या है जिसका उपदेश यमाचार्य ने नचिकेता को दिया था। अर्थात यज्ञ विद्या के जानने वाले (5) आज्यया = घृतादि का सेवन करने वाले (6) सुकालिनः = अच्छे समय बाले। सत्कर्मा व्यक्तियों का समय अच्छा ही होता है। ये सभी विशेषण जीवित पितरों पर ही घटित होते हैं। इसी आधार पर महर्षि दयानन्द ने पितर का अर्थ 'ये सत्याविज्ञान दानेन जनात् यान्ति रक्षन्ति' किया है। अर्थात् जो मनुष्यों को सत्य विद्या का उपदेश करके उनकी रक्षा करते हैं, वे पितर हैं। उपर्युक्त मंत्रों में भी सर्वत्र ऐसा ही कहा गया है। सायणाचार्य ने भी निम्न मन्त्र का यही अर्थ किया है–

वर्हिषदः पितर ऊत्युर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् त आ गतावसा शन्तमेनाथा नःशं योर रपो दधात।।

यजुः 19/55

अर्थात् यज्ञ में बैठे पितर हमारी हवि=सेवा को स्वीकार करें तथा हमें पापरहित तथा सुखी करें।

हमने यहां पर यही सिद्ध किया है कि वेदों में कहीं भी मृतक श्राद्ध का वर्णन नहीं है। इस विषय में पुराणों में पर्याप्त सामग्री है, किन्तु वह विष सम्पृक्त अन्न के समान त्याज्य है। अन्य ग्रन्थों में भी पितर शब्द जीवित माता–पिता आदि के लिए ही आया है। यथा मनुस्मृति में श्रद्धा पूर्वक पितरों की अर्चना=पूजा=सत्कार करने को कहा गया है–श्रद्धया पितृन। यह जीवित माता–पिता की ही सम्भव है। महाकवि कालिदास महाराज दिलीप का वर्णन करते हुए कहते हैं–

स पिता पितर स्तेषां केवलं जन्महेतवः। अर्थात् दिलीप ही अपनी प्रज्ञा का पिता=पालक था। उनके पितर=माता–पिता तो केवल जन्म देने वाले थे।

पितृ श्राद्ध आदि अनेक कार्य पण्डे–पुजारियों ने भोली–भाली जनता को फंसा कर धन ऐंठने के लिए चलाए हुए हैं। यहां पर एक सच्ची घटना दी जाती है कि अमेठी के राजा रञजय सिंह के मरने पर उनके पुत्र धनंजय सिंह से राजा की पैंतीस लाख की कोठी अपने नाम करा ली थी। सामान्य व्यक्ति से भी दस हजार रुपये यह कहकर पण्डा लेता था कि तुम्हारा बाप एक ही बार तो मरा है, रोज तो नहीं मरेगा। इनके विषय में यह कथा सुप्रसिद्ध है कि एक पण्डे का पुत्र अपने पिता से पूछ रहा है–

अपरि गच्छान्ति डक्कारा अधो वायुर्न गच्छति। निमन्त्रण तिष्ठति द्वारि किं करोमि पित अचुना।।

हे पिताजी डकार ऊपर को आ रही है। अपान वायु नहीं निकल रही, किन्तु नया निमन्त्रण आ गया।

अब मैं क्या करूं? पण्डे का उत्तर –

भोजनं कुरु दुर्बुद्धे मा शरीरे दयां कुरु

ऐसे कार्यो के लिए मृतक श्राद्ध आदि को बनाया गया।

पूर्व प्रोफेसर, रामजस कालेज, दि.वि.वि.

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 19-20 /03/2014
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने किया महर्षि दयानन्द जन्मोत्सव पर अखिल भारतीय वैदिक संगीत गोष्ठी का आयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्मोत्सव पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली के तत्वावधान में अखिल भारतीय वैदिक संगीत संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें 109 डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं के 116 संगीत अध्यापकों ने भाग लेकर वैदिक भजनों एवं गीतों की प्रस्तुति दी। दोनों दिन वैदिक यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें पदाधिकारियों के अतिरिक्त पधारे हुए प्रतियोगियों ने भी भाग लिया। दो दिन तक चले इस संगीत मेले के समापन सत्र की अध्यक्षता करते हुए श्री प्रबोध महाजन, उपप्रधान, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली ने संगीत शिक्षकों का आह्वान किया कि वे वैदिक विचारों और सिद्धांतों से परिपूर्ण गीतों और भजनों के माध्यम से आर्य समाज के प्रचार प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायें। उन्होंने कहा कि यह बहुत जरूरी हो गया है कि अध्यापक

स्वयं आर्य समाज के विचारों एवं सिद्धांतों से परिचित हों जिससे वे बच्चों में इन मूल्यों की स्थापना करने में सशक्त हो सकें।

इस प्रतियोगिता में दिल्ली विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसरों प्रो. अंजलि मित्तल जी, प्रो. सुनीता धर जी, एवं श्री मणी कंडन को निर्णायक के रूप में आमन्त्रित किया गया था। प्रतियोगिता में इस वर्ष कड़ा मुकाबला देखने को मिला। सर्वसम्मति से निम्न प्रतियोगियों को पुरस्कृत किया गया।

श्री विकास रेल्हन, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सेक्टर–3 कुरूक्षेत्र, हरियाणा प्रथम, श्रीमती सरोबनी मण्डल, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, दुर्गापुर, वैस्ट बंगाल एवं श्री मनीष मत्तु, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, लारेन्स रोड़ अमृतसर द्वितीय, श्रीमती मुक्ता श्रीवास्तव, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल –14 फरीदाबाद, श्री चन्दन कुमार झा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल द्वारका नई दिल्ली एवं श्री अरुण पुरुषोत्तम दिवे नेलजेय, यवतमाल, महाराष्ट्र तृतीय। इसके अतिरिक्त सुश्री पारूल शर्मा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सेक्टर–14, गुडगांवा हरियाणा, श्री रविशंकर मित्रा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, आरा सासा, रामगढ़, झारखण्ड, श्री विभुशंकर मिश्रा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, केडला, हजारीबाग, झारखण्ड, सुश्री बबली दास, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सेक्टर–14 गुडगावां एवं सुश्री शिल्पी मदान, डी.ए.वी. पबिलक स्कूल द्वारका, नई दिल्ली को सान्त्वना पुरस्कार दिया गया।

वैदिक गोष्ठी में श्री आर.एस शर्मा, महासचिव डी.ए.वी. प्रबन्धक समिति, श्री रामनाथ सहगल, श्री अजय सूरी, श्री रविन्द्र कुमार, श्री एच के भाटिया श्री आर.आर. भल्ला, श्री सत्यपाल आर्य, श्री अजय सहगल, ब्रि. ए के अदलखा, श्री बल्देव जिन्दल, श्री चन्द्र मोहन खन्ना आदि ने पधारकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। इस संगीत गोष्ठी का संचालन श्री एस के शर्मा, मन्त्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने किया।

डी.ए.वी. सफिलगुड़ा (हैदराबाद) में मनाई गई महर्षि दयानंद जयंती

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सफिलगुडा (हैदराबाद) में आर्य समाज संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती जी की 190वीं जयंती मनाई गई। इस अवसर पर दक्षिण भारत के डी.ए.वी विद्यालयों के प्रधानाचार्य गण तथा विभिन्न क्षेत्रीय आर्य समाज संस्थाओं के सदस्य भी उपस्थित हुए।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री जे. पी.शूर जी (डायरेक्टर पी एस.–1, डी.ए.वी. सी.एम.सी) थे। कार्यक्रम का आरम्भ श्री शूर जी तथा प्रधानाचार्या एवं क्षेत्र निर्देशिका श्रीमती सीता किरण जी द्वारा यज्ञ से किया गया। इस अवसर पर शिक्षकों तथा छात्रों द्वारा कई वैदिक भजनों का गायन भी किया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम हिंदी में आयोजित किया गया। जिसे देखकर श्री शूर जी एवं उपस्थित आर्यजन गद्‌ग हो गए।

शूर जी ने दक्षिण भारत में इस तरह से हिंदी में आयोजित कार्यक्रम के लिए

प्रधानाचार्या श्रीमती सीता किरण जी एवं अध्यापकों को बधाई दी उन्होंने महर्षि दयानंद जी को याद करते हुए उनके समाज के प्रति योगदान जन समूह को अवगत कराया। उन्होंने युवा पीढ़ी में आर्य संस्कार तथा नैतिक गुणों का विकास करने पर जोर दिया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा आ.प्र. के मंत्री श्री हरिकिशन वेदालंकार जी तथा पुरोहित श्री प्रियदत्त शास्त्री जी ने भी महर्षि दयानंद जी द्वारा किये गए उपकारों से जन समूह को अवगत कराया एवं अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए। उन्होंने भी प्रधानाचार्या जी को इस आयोजन के लिए साधुवाद दिया।

प्रधानाचार्या श्रीमती सीता किरण जी ने उपस्थित सभी आर्यजनों का धन्यवाद किया तथा भविष्य में इसी प्रकार महर्षि दयानंद जी की जयंती मनाने की इच्छा व्यक्त की।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**